पाठ्यचर्या बदलाव के लिए
व्यवस्थागत सुधार

राष्ट्रीय फोकस समूह

का

आधार पत्र



2.2

पाठ्यचर्या बदलाव के लिए व्यवस्थागत सुधार

राष्ट्रीय फोकस समूह

का

आधार पत्र

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जनवरी 2009 पौष 1930

PD 3T NSY

रु 20.00

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा बंगाल ऑफसैट वर्क्स, 335, खजूर रोड, करोलबाग, नयी दिल्ली 110 005 द्वारा मुद्रित।

ISBN 978-81-7450-935-2

एन सी ई आर टी के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
होस्डेकेरे हेली एक्सटेंशन
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग	:	*पेय्येटि राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*शिव कुमार*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक	:	*गौतम गांगुली*
संपादक	:	*नरेश यादव*
उत्पादन	:	*अरुण चितकारा*

सज्जा एवं आवरण
श्वेता राव

सार-संक्षेप

1. भारत के संविधान के 86वें संशोधन के तहत एवं अभिभावकों की शिक्षा के लिए विस्फोटक माँग के संदर्भ में अपने विद्यालयों की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए और भारतीय शिक्षा व्यवस्था में बदलाव के लिए हमारी यह ज़रूरत हो जाती है कि हम कम-से-कम कक्षा दस तक की विद्यालयी शिक्षा के सार्वभौमिकरण की निरंतर असफलताओं पर गंभीरतापूर्वक विचार करें, ताकि यह भारतीय संविधान में प्रतिष्ठापित समाज के दर्शन को साकार कर सके।
2. विद्यालयों द्वारा बहिष्करण की संरचनाओं के विरुद्ध सक्रियता से काम किए जाने की ज़रूरत है ताकि विद्यालयों में बच्चों की पूरी भागीदारी हो सके। विद्यालय यह सुनिश्चित करें कि प्रत्येक विद्यार्थी की विद्यालयी जीवन तक पहुँच हो। विद्यालयों को उन बच्चों को प्रोत्साहित करना चाहिए और सुविधाएँ देनी चाहिए जो विद्यालय छोड़ गए हैं या बाहर धकेल दिए गए हैं ताकि वे वापस आ सकें। वे यह भी सुनिश्चित करें कि बच्चे कम-से-कम कक्षा दस तक नियमित शिक्षा पा सकें। वे इस बात को भी समझें और अमल करें कि शिक्षा बच्चों का संविधान प्रदत्त अधिकार है और राज्य का यह कर्तव्य बनता है कि इस अधिकार की पूर्ति करें। विद्यालयों को समुदाय में सभी बच्चों के कल्याण तथा अधिकारों की निगरानी के लिए न केवल मदद करनी चाहिए बल्कि इसे बढ़ावा देना चाहिए तथा इसे प्रदर्शित भी करना चाहिए।
3. गरीब बच्चे विशेष तौर पर वे बच्चे जिनकी पहली पीढ़ी विद्यालयी शिक्षा प्राप्त कर रही है, के विषय में यह संदेश स्पष्ट होना चाहिए कि उनके लिए घर पर शिक्षा प्राप्त करने की कोई व्यवस्था नहीं है। कोई भी बच्चा जिसे स्कूल में पढ़ाया जा रहा है उसे समझ में न आने की वजह से अथवा धीमी गति से सीखने की वजह से विद्यालय से न निकाला जाए। संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था, इसके कर्मचारियों तथा विद्यालयों के शिक्षकों को यह समझना चाहिए कि शासकीय व्यवस्था के उपयुक्त ढंग से बदलने की आवश्यकता है ताकि वह इन बच्चों के प्रति संवेदनशील हो सकें।
4. यह शिक्षक ही है जिसे सबसे पहले बच्चों के बच्चों से 'विद्यार्थी' बनने तक के सफ़र का अनुभव प्राप्त होता है और वह सभी प्रकार की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भाषायी बाधाओं को पार करता है। एक अदद विद्यालय न जाने वाले बच्चे को भी 'विद्यार्थी' में बदलने में व्यवस्था की ढिलाई सार्वभौमिकता के सिद्धांत को हल्का करती है और शिक्षक को शक्तिहीन बनाती है। बच्चे का शिक्षा का अधिकार और विद्यालयों में भागीदारी का अधिकार शिक्षक को उस बच्चे को विद्यालय में रखने और बाहर न जाने देने की ऊर्जा प्रदान करता है। वास्तव में बच्चों के शिक्षा के अधिकार और शिक्षक सशक्तीकरण को एक दूसरे से जुड़ा होना चाहिए। शिक्षक पर विश्वास करना एक ऐसी आवश्यकता है जिस पर समझौते का कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

5. प्राथमिक विद्यालयों के स्तर पर कक्षा और विद्यालयों में समुदाय की भागीदारी इस बात की माँग करती है कि पाठ्यचर्या के एक हिस्से को या तो विद्यालय के स्तर पर रचा जाए या फिर एक ही क्षेत्र में कुछ स्कूलों के समूह के स्तर पर। इस प्रक्रिया में क्लस्टर रिसोर्स सेंटर (सी.आर. सी.), ब्लॉक रिसोर्स सेंटर (बी.आर.सी.) और डाइट में काम करने वालों को शामिल किए जाने की ज़रूरत है। उन्हें विद्यालयों और प्राथमिक विद्यालय के बच्चों के साथ पर्याप्त समय बिताना चाहिए तथा शिक्षकों के साथ लंबे समय तक काम करके सामग्री और विचारों को सामने लाना चाहिए।
6. प्रत्येक स्तर पर मौजूदा शिक्षा से जुड़ी संस्थाओं में लोकतंत्रीकरण की प्रक्रियाओं को मजबूत करने के लिए व्यवस्थात्मक बदलाव ज़रूर किए जाएँ और इन प्रक्रियाओं की स्थिति को दर्शाने वाले तरीकों को भी उपयुक्त जगह मिलनी चाहिए। विकेंद्रीकरण के सायास तरीके के जरिए ही स्कूल, विभाग तथा शैक्षणिक संस्थाओं का विकेंद्रीकरण हो सकता है। स्थानीय प्रशासन व्यवस्था को स्टाफ़ एवं नौकरशाही के प्रत्येक सोपानों के व्यक्तियों से भारी समर्थन की ज़रूरत हो सकती है। इस संबंध में मुख्य मुद्दे हैं – स्थानीय, प्रांतीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर काम करने वाली बहुस्तरीय राजनीतिक विभागीय व्यवस्था की रूपरेखा बनाना और प्रत्येक स्तर की बच्चों के शिक्षा के अधिकार के समर्थन में भूमिका के विषय में समझ विकसित करना।

   दूसरे शब्दों में, विकेंद्रीकरण को निचले स्तर के पदानुक्रम पर ऐसी ज़िम्मेदारियों को लादने के रूप में नहीं लेना चाहिए जो उनके निर्णय प्रक्रिया के लिए उपयुक्त न हों। विकेंद्रीकृत शैक्षिक व्यवस्था में पर्याप्त लचीलापन एवं स्वायत्तता होनी चाहिए। साथ ही नीति निर्माण, वित्त आवंटन, प्रशासनिक निर्देशक प्रावधान, अकादमिक समर्थन और एक कानूनी तथा नियमित ढाँचा इस प्रकार तैयार किया जाए ताकि वह सबसे निचले स्तर के स्वायत्त निर्णय लेने की प्रक्रिया को समर्थन दे सके। व्यवस्था को विद्यालयी भागीदारी को बढ़ाने, सांस्कृतिक विविधता को सम्मिलित करने, सूक्ष्म योजना तथा सामाजिक दायित्व की शुरुआत करने में सक्षम होना चाहिए।
7. ग्राम पंचायतों की उत्तम भागीदारी द्वारा समुदायों को मज़बूत बनाए जाने की आवश्यकता है। साथ ही शिक्षकों को भी अपने दायित्वों को प्रभावी ढंग से पूरा करने के लिए सशक्त किया जाना ज़रूरी है। तब भी विकेंद्रीकरण एवं स्थानीय भागीदारी के लिए गुहार कट्टरवादी प्रकृति की नहीं है। (इसका सुझाव इसलिए किया गया है क्योंकि सूक्ष्म) योजना के लिए, बच्चों की ज़रूरत के अनुरूप कार्यनीति बनाने, स्थानीय संघर्षों को सुलझाने तथा स्थानीय स्तर पर समस्याओं को सुलझाने के लिए इसकी आवश्यकता है। इस तरह के निर्णय ऐसे स्तर पर नहीं लिए जा सकते जो स्थानीय स्तर से ऊपर न हों और जिनमें समुदाय तथा स्थानीय निकायों की भागीदारी न हो। इसलिए स्थानीय संदर्भ के साथ संगति बैठाते हुए पाठ्यचर्या परिवर्तन में बहुलता तथा सांस्कृतिक विविधता को मान देना अनिवार्य हो जाता है।

8. भूमिकाओं के संदर्भ में भी स्पष्टता होनी चाहिए और संपूर्ण संरचना की कार्यविधि परस्पर पूरकता के सिद्धांत पर टिकी हुई होनी चाहिए। यह ज़िम्मेवारियों के दुहराव, समय की बर्बादी और संसाधन तथा नियंत्रण के विभ्रम को दूर करेगा। 'स्थानीय निकायों' के लिए खाली मॉनिटरिंग तथा लक्ष्य निर्धारण का कार्यक्रम ही नहीं होना चाहिए बल्कि इसके समर्थन के लिए रचनाएँ विकसित की जानी चाहिए। यह व्यवस्था व्यवसायीकरण तथा पदानुक्रम के प्रत्येक सोपान के अधिकारियों की सघन भागीदारी की माँग करती है।
9. संपूर्ण व्यवस्था को लक्ष्य चालित होने की जगह प्रक्रिया चालित होना चाहिए। यह सीमित अवधियों में अंकुरित होने वाली लघु परियोजनाओं की जगह एक लंबी अवधि की अंतरपीढ़िक योजनाकरण की माँग करती है। इसके अलावा कार्यप्रणाली का तौर-तरीका ऐसा हो जिसे सभी समझ सकें तथा स्वीकार कर सकें। साथ ही यह शिक्षक, शिक्षाविद् एवं पेशेवरों की पृष्ठभूमि से आए लोगों की माँग के जवाब में व्यवस्थित तरीके से तकनीकी सहायता एवं विशेषज्ञता मुहैया करवा सके। अपने वार्षिक मूल्यांकन/रपट में प्रत्येक स्तर को मसलन सी.आर.सी., बी. आर.सी., डाइट, एस.सी.ई.आर.टी. तथा सभी शिक्षा विभागों, परीक्षा बोर्डों को समुदाय, शिक्षक तथा विद्यालयों की ओर से आई हुई माँगों के संदर्भ में उनके द्वारा किए गए नीतिगत सुधारों, पहलकदमियों का रिकार्ड पेश किया जाना चाहिए। पूर्ति-चालित शिक्षक कार्यक्रम से किसी भी कीमत पर बचना चाहिए और जब भी ऊपर से नीचे उपागम वाले कार्यक्रमों की आवश्यकता हो विद्यालयी शिक्षकों में इसके प्रति विश्वास बनाने के लिए आवश्यक समय लिया जाना चाहिए। सभी प्रकार के निर्णयों का संस्थानीकरण किया जाए न कि उन्हें अस्थायी तौर पर व्यक्तिगत प्रतिक्रिया के रूप में या वित्त चालित एजेंडा के रूप में लिया जाए।
10. समावेशित पाठ्यचर्या : पाठ्यचर्या को सांस्कृतिक विविधताओं का आदर करना चाहिए तथा ऐसी नीतियाँ बनाएँ जो किसी का भी बहिष्कार न करें।
11. प्रचलित शिक्षा व्यवस्था के विकेंद्रीकरण के काम-काज की जाँच करने के लिए हमें नियमित रूप से शोध अध्ययन करने एवं रपटें बनानी चाहिए और साथ ही यह देखना चाहिए कि क्या व्यवस्थागत तथा संगठनात्मक परिवर्तन हुए हैं और इन अनुभवों को बाँटने की भी निरंतर आवश्यकता है।

पाठ्यचर्या बदलाव के लिए व्यवस्थागत सुधार पर बने राष्ट्रीय फोकस समूह के सदस्य

प्रो. शांता सिन्हा (अध्यक्ष)
सचिव, एम.वी. फाउंडेशन एवं
प्रो. राजनीति शास्त्र
हैदराबाद विश्वविद्यालय
आंध्र प्रदेश

डॉ. हृदयकांत दीवान
विद्या भवन सोसायटी
डॉ. मोहन सिंह मेहता मार्ग
फतेहपुर, उदयपुर–313004
राजस्थान

सुश्री मैक्सिन बर्नस्टन
प्रगट शिक्षण संस्थान
पो. बॉक्स नं. 55
ज़िला – सतारा, फाल्टन–413523
महाराष्ट्र

श्रीमती विमला रामचंद्रन
शैक्षिक संसाधन इकाई
XC–1, सह विकास 68
आई. पी. एक्सटेंशन
दिल्ली–110092

प्रो. निर्मल गुप्ता
डी.ई.पी.एफ.ई,
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली–110016

डॉ. पी.सी. मोहपात्रा
एन–1/55, आई.आर.सी. गाँव
न्यायपल्ली, भुवनेश्वर–751015
उड़ीसा

डॉ. रश्मि सिन्हा
सर्व शिक्षा अभियान (एस.एस.ए.)एवं ज़िला
प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.)
राज्य परियोजना कार्यालय
विद्या भवन, निशातगंज
लखनऊ–226007
उत्तर प्रदेश

सुश्री अंजली नरोन्हा
एकलव्य ई–7/453
अरेरा कॉलोनी, भोपाल–462914
मध्य प्रदेश

प्रो. बाबू मैथ्यू
कंट्री डाइरेक्टर
एक्शन एड–इंडिया
सी–88, साउथ एक्सटेंशन पार्ट–II
नयी दिल्ली–110049

श्री दयाराम
आगा खान फाउंडेशन
सरोजिनी हाउस, द्वितीय तल
6, भगवान दास रोड
नयी दिल्ली–110001

श्री दामोदर जैन
डाइट, कुंडेशवर/डी.पी.आई.पी.
टीकमगढ़, मध्य प्रदेश

डॉ के. जगन्नाथ राव
निदेशक, डी.एस.ई.आर.टी.
न. 4, 100 फीट रिंग रोड
कथिगुप्पे, बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु - 560085
कर्नाटक

सुश्री दीपा धनराज
268, पाँचवाँ क्रॉस रोड
थर्ड मेन, I ब्लॉक
कोरमंगला, बेंगलुरु - 560034
कर्नाटक

श्री टी.आर. रघुनंदन
आई.ए.एस., संयुक्त सचिव
कर्नाटक सरकार
बेंगलुरु, कर्नाटक

डॉ. डी. गोपाल राव
प्रोफ़ेसर (शिक्षा) (सेवानिवृत्त)
1017, पच्चीसवीं मेन
बनाशंकरी - II स्टेज
बेंगलुरु - 560070
कर्नाटक

श्री अब्दुल लतीफ
सहायक शिक्षक
गवर्मेंट एल.पी.एस.
चिक्का अनकनाहल्ली
तालुक मद्दुर
मांड्या, तमिलनाडु

श्री चेग्गु रेड्डी
सहायक शिक्षक
गवर्मेंट एम.सी.एस. बेलावानकी तालुक
ज़िला - गडग
धारवाड़ के पास
कर्नाटक

अनुवाद सहयोग

श्री अजय सिंह, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007

डॉ. राधा, 4/276, चिरंजीव विहार, गाजियाबाद-201002

श्री मनोज मोहन, पी.डी. 64/ सी., पीतमपुरा, दिल्ली-110088

डॉ. रंजना अरोड़ा, *प्रवाचक,* पाठ्यचर्या समूह, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली-110016

विषयसूची

1. अतीत का अवलोकन और भविष्य की योजना

भारतीय संविधान के 86वें संशोधन (2002) ने 6 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को शिक्षा का अधिकार मुहैया कराया है। यह एक देश के द्वारा 20 करोड़ बच्चों से किए गए वादे का नवीनीकरण है। राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत (भारतीय संविधान का अनुच्छेद 45) बच्चों के जन्म से उनके स्कूल पहुँचने (0–6 साल) तक की अवधि में उनकी देखभाल और सुरक्षा देने को कहते हैं। इसका असर देश के उन 15 करोड़ बच्चों पर पड़ता है जिनका स्वास्थ्य और देखभाल एक ऐसा आदेशपत्र है जिसका सम्मान करना राज्य की बाध्यता है। इस संदर्भ में अपने स्कूलों की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए और भारतीय शिक्षा व्यवस्था में बदलाव के लिए हमारी यह ज़रूरत हो जाती है कि हम कम से कम कक्षा दस तक की स्कूली शिक्षा के सार्वभौमिकरण की निरंतर असफलताओं पर गंभीरतापूर्वक विचार करें, ताकि यह भारतीय संविधान में अंतर्निहित समाज के दर्शन को साकार करे।

1.1 सीखने का स्तर नीचा, स्कूल छोड़ने की दर ऊँची

आज़ादी के सत्तावन साल बाद भी, एक अनुमान के अनुसार 5 से 15 वर्ष की उम्र समूह के 10–12 करोड़ बच्चे या तो कभी स्कूल नहीं गए या फिर उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। ये अपने देश के बच्चों की आबादी का लगभग 50 प्रतिशत हैं। स्कूल के बाहर रह गए बच्चों का निरंतर शोषण हो रहा है तथा ये काम के बोझ तले पिसते चले जा रहे हैं। अपनी क्षमता को साकार करने की संभावनाएँ इन बच्चों के पास काफ़ी कम हैं। अवैतनिक घरेलू कामों और असंघटित क्षेत्रों (Unorganised Sector) में काम करने वाले ये बच्चे न तो श्रमिक के रूप में हमारी चेतना का हिस्सा बनते हैं, न ही बच्चों के रूप में। स्कूल के बाहर रहने वाली लड़कियाँ काफ़ी छोटी उम्र में बाल विवाह का शिकार होती हैं जो उनके संपूर्ण विकास और वृद्धि को प्रभावित करता है। मानसिक और शारीरिक चुनौतियों का सामना करने वाले बच्चों को पूरी तरह से ही नज़रअंदाज़ कर दिया जाता है। उन्हें किसी भी तरह की स्कूली–शिक्षा को हासिल करने में भयंकर परेशानियाँ आती हैं।

अब यह एक स्थापित सत्य है कि सरकारी स्कूल मुख्यत: गरीबों के लिए हैं। इन स्कूलों में पढ़ने वाले ज़्यादातर बच्चे तमाम अवरोधों से गुज़रते हुए इन स्कूलों में पहुँचते हैं। यद्यपि यह व्यवस्था दुनिया की सबसे बड़ी शिक्षा व्यवस्थाओं में से एक है पर दुर्भाग्यवश यह बेकार और अक्षम है। यह मूल तौर पर एक राष्ट्रीय सरोकार का मसला है कि 54.6 प्रतिशत बच्चे (56.9 प्रतिशत लड़कियाँ) कक्षा 8 तक की पढ़ाई पूरी करने के पूर्व ही स्कूल छोड़ देते हैं और 66 प्रतिशत बच्चे (68.6 प्रतिशत लड़कियाँ) कक्षा 10 से पहले ही स्कूलों को छोड़ देते हैं। (भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय की वेबसाइट पर शैक्षणिक वर्ष 2001–02 का अंतरिम आँकड़ा)[1]। जनजातीय क्षेत्रों तथा पिछड़े ज़िलों में और अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों में स्कूल जाने वाले बच्चों के प्रतिशत में भारी कमी है। साथ ही पाँच साल तक निरंतर स्कूल में जाने के बावजूद केवल 60 प्रतिशत बच्चे ही पढ़, लिख और बुनियादी गणना कर पाते हैं। मानो व्यवस्था रची ही ऐसी गई हो कि वह केवल उन थोड़े से बच्चों का ध्यान रखे जो कक्षा एक में प्रवेश लेते हैं और कक्षा दस तक पहुँचते हैं। वास्तव में, नगर–निगम स्कूल या सरकारी ग्रामीण स्कूल की कक्षा एक में दाखिला लेने वाला कोई विद्यार्थी कक्षा दस तक किसी दुर्घटना से ही पहुँच पाता है न कि इस व्यवस्था की रचना से। कई प्रकार के निजी और सार्वजनिक स्कूलों के प्रावधान देश में एक असंगत और असमान शिक्षा व्यवस्था के लिए ज़िम्मेदार हैं।

---

1. *प्राथमिक स्तर पर स्कूल छोड़ने की दर (कक्षा 1 से 5) लड़के: 38.4%, लड़कियाँ: 39.9% और कुल 39%। उच्च प्राथमिक स्तर पर स्कूल छोड़ने की दर (कक्षा 1 से 8); लड़के: 52.9%, लड़कियाँ: 56.9% और कुल: 54.6% । कक्षा 1 से 10 तक स्कूल छोड़ने की दर–लड़के: 64.2%, लड़कियाँ: 68.6% और कुल: 66% (स्रोत : डी.ओ.ई.ई.एल. मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की वेबसाइट, शैक्षणिक वर्ष 2001–02 का अंतरिम आँकड़ा।*

1.2 शिक्षकों की कमी

यद्यपि 1993 से 2003 तक नामांकन के प्रतिशत में बढ़ोतरी हुई है – प्राथमिक स्तर पर 26.15, उच्च प्राथमिक स्तर पर 37.49, हाई स्कूल स्तर पर 43.21 और उच्च माध्यमिक स्तर पर 28.73, परंतु शिक्षकों की प्रतिशत बढ़ोतरी में इस रफ़्तार से प्रगति नहीं हुई। न ही उन अर्थों में स्कूलों के प्रतिशत में बढ़ोतरी हुई। इस प्रवृत्ति का सबसे खतरनाक प्रभाव ग्रामीण, दूर-दराज तथा जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षकों की घोर कमी के रूप में देखा जा सकता है। यद्यपि उच्च प्राथमिक स्तर पर स्कूलों और शिक्षकों की संख्या की दर में जो बढ़ोतरी हुई है वह काफ़ी महत्वपूर्ण है जबकि व्यवस्था की संरचना इस मान्यता पर आधारित है कि लगभग 1/3 बच्चे, जो कि प्राथमिक स्कूलों में दाखिला लेंगे वे उच्च प्राथमिक स्तर तक पहुँचने से पहले ही स्कूल छोड़ देंगे और अन्य 1/3 हाई स्कूल से पहले और इसी प्रकार आगे की कक्षाओं में।[2]

2. कई प्रकार के सरकारी स्कूल

भारत सरकार, राज्य सरकार, और ग्रामीण क्षेत्रों की स्थानीय स्वशासी संस्थाओं (पंचायत) और शहरी क्षेत्रों के निगम के निकायों द्वारा कई प्रकार के सरकारी स्कूल चलाए जाते हैं।

- **औपचारिक सरकारी स्कूल** – राज्य सरकारों द्वारा चलाए जाने वाले प्राथमिक, उच्च प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्कूल।
- **परिवर्ती स्कूल (परिवर्तन के समय बनाए गए स्कूल)** – स्थानीय निकायों और राज्य सरकारों द्वारा प्रबंध किए जाने वाले शिक्षा गारंटी योजना के स्कूल (मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़), राजीव गांधी पाठशाला (राजस्थान), वैकल्पिक स्कूल (कई राज्यों में स्थानीय मॉडल और नाम), शिशु शिक्षा केंद्र(पश्चिम बंगाल) इत्यादि।
- **ब्रिज कोर्स (आवासीय और गैर-आवासीय)** – स्कूल न पहुँच पाने वाले अधिक उम्र के बच्चों के लिए अल्पकालिक स्कूल ताकि वे अपनी उम्र के अनुसार ग्रेड/कक्षा तक पहुँच सकें।

भारत

स्कूलों में प्रतिशत बढ़ोतरी	**1986-1993**	**1993-2003**
प्राथमिक	7.89	14.18
उच्च प्राथमिक	17.11	50.65
माध्यमिक	24.74	38.43
उच्च-माध्यमिक	53.00	85.74
नामांकन में प्रतिशत बढ़ोतरी	**1986-1993**	**1993-2003**
कक्षा 1-5	12.94	26.15
कक्षा 6-8	24.93	37.49
कक्षा 9-10	32.11	43.21
कक्षा 11-12	55.72	28.73
शिक्षकों की संख्या में प्रतिशत बढ़ोतरी	**1986-1993**	**1993-2003**
प्राथमिक	8.75	17.83
उच्च प्राथमिक	12.73	40.01
माध्यमिक	14.62	20.09
उच्च-माध्यमिक	44.30	68.68

स्रोत: छठा अखिल भारतीय शैक्षणिक सर्वेक्षण 1998 और सातवाँ अखिल भारतीय शैक्षणिक सर्वेक्षण : 2004, एन.सी.ईआर.टी.।

2. *स्कूल, नामांकन और शिक्षकों के प्रतिशत में बढ़ोतरी, भारत*

- **वैकल्पिक स्कूल** – छह घंटे और चार घंटे चलने वाले स्कूल और 'चल-स्कूल'।
- **आश्रमशाला** – आदिवासी बच्चों के लिए आदिवासी कल्याण मंत्रालय द्वारा वित्तीय समर्थन से चलाए जाने वाले औपचारिक आवासी विद्यालय।
- **आवासीय स्कूल** – वंचित समूह जैसे अनुसूचित जाति के लिए आवासीय स्कूल जो वंचित समुदाय के कल्याण के लिए संबंधित मंत्रालय के वित्तीय समर्थन से चलते हैं।
- **केंद्रीय विद्यालय** – केंद्र सरकार के कर्मचारियों (सशस्त्र सेनाओं सहित) के बच्चों के लिए, जिनका स्थानांतरण समूचे देश में कहीं भी हो सकता है।
- **नवोदय विद्यालय** – भारत सरकार द्वारा पूरी तरह से वित्तीय समर्थित और प्रबंधित तथा उत्कृष्टता के लिए चलाए जाने वाले आवासीय स्कूल।

2.1 निजी विद्यालय

इन सबके अलावा, सरकार द्वारा मान्यताप्राप्त ऐसे भी स्कूल हैं जिनका प्रबंधन निजी तौर पर किया जाता है, जिनमें से कुछ सरकार द्वारा अनुदान भी पाते हैं और बाकी अन्य को कोई अनुदान नहीं मिलता (गैर-अनुदान प्राप्त स्कूल)। यद्यपि समूची व्यवस्था में इन स्कूलों का प्रतिशत कम है पर इनकी संख्या तेज़ी से बढ़ रही है और इनका यह विस्तार सरकारी स्कूलों के लिए ज़बरदस्त चुनौती है। ऐसे निजी स्कूल भी हैं जो विशिष्ट ज़रूरत वाले बच्चों को ध्यान में रखकर चलाए जाते हैं जैसे बच्चे जो देख नहीं सकते, सुन नहीं सकते या धीमी गति से सीखने वाले बच्चे। यह दुखद स्थिति है कि बड़ी संख्या में गैर-मान्यताप्राप्त स्कूलों और ट्यूशन केंद्रों का विकास हो रहा है जो केवल उन बच्चों का ध्यान रखते हैं जो इसकी कीमत दे सकते हैं और यह गरीबी की स्थितियों में रह रहे बच्चों के विरुद्ध चली गई एक और चाल है।[3]

2.2 विद्यालयों में सुविधाएँ

एक ओर जहाँ स्कूलों के कई प्रकार हैं वहीं दूसरी ओर सरकारी व्यवस्था के इन स्कूलों में मौजूदा बुनियादी सुविधाओं की उपलब्धता में भी व्यापक अंतर है। छोटे गाँवों में ऐसे भी स्कूल हैं जिनके पास अपना कोई भवन नहीं है और ये स्कूल निजी, सामुदायिक या किराए के कमरों में चलते हैं। वहीं दूसरी और बड़े गाँवों में ऐसे स्कूल हैं जिनके पास ईंट और पत्थरों से निर्मित अपना भवन है और उनके परिसर में वृक्ष भी लगे होते हैं। महानगरीय क्षेत्रों में नगर निगम के स्कूलों के पास बहुधा भवन हुआ करते हैं जिनकी आरंभिक रचना तो अच्छी होती है लेकिन निरंतर उपेक्षा की वजह से काफ़ी खराब हालत में होते चले जाते हैं।

चूँकि सरकारी स्कूलों के संदर्भ में ऐसी समझ है कि वे अच्छी शिक्षा देने के लिए अनुपयुक्त और काफ़ी कमज़ोर हैं इसलिए उनकी जगह तेज़ी के साथ निजी स्कूल लेते जा रहे हैं। उनमें से अधिकांश का एकमात्र बिक्री विज्ञापन होता है – 'अँग्रेज़ी माध्यम'।

2.3 व्यवस्था संबंधी सरोकार

वर्तमान में स्कूल समुदाय और उसकी आर्थिक विभिन्नता को दर्शाते हैं, साथ ही वे इस अलगाव को मजबूत भी कर रहे होते हैं। इस पूरी व्यवस्था में जो मुख्य मसला है वह यह है कि स्कूल को ऐसे रखा और समझा जाए कि यह सामाजिक बदलाव को लाने वाली एक संस्था बने और एक ऐसा स्थान हो जहाँ बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा होती हो तथा जहाँ समता और न्याय की वही संकल्पना साकार हो जैसा संविधान में परिकल्पित किया गया है। भारतीय संदर्भ में स्कूल को एक ऐसी संस्था के तौर पर लिया जाता है जो बच्चों को काम और मजदूरी के चक्के तले पिसने से, बाल विवाह से और लैंगिक असमानता से, विभिन्न प्रकार के सामाजिक और सांस्कृतिक

3. *प्रतीची (भारत) ट्रस्ट : द प्रतीची एजुकेशन रिपोर्ट, नयी दिल्ली-2002,* ***प्रोब*** *रिपोर्ट – पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन इन इंडिया, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली 1999 और रामचंद्रन, विमला (संपा.) : जेंडर एंड सोशल इक्विटी इन प्राइमरी एजुकेशन – हाईरार्की ऑफ़ एक्सेस, सेज पब्लिकेशन, नयी दिल्ली-2004*

भेदभाव से बचाए और जो नई पीढ़ी के संसाधनों और सांस्कृतिक पूँजी में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करे तथा उन्हें वे तमाम चीज़ें मुहैया कराए जो एक विद्यार्थी होने के नाते उन्हें मिलनी चाहिए। स्कूल सार्वजनिक तौर पर उपलब्ध एक ऐसी जगह है जिसमें कि एक तरह की सार्वजनिक छँटनी होती है। जबकि यह एक ऐसी जगह होनी चाहिए जहाँ बच्चे आना चाहें और विभिन्न स्तरों पर संपर्क करें तथा आत्मसम्मान और गुरुता के साथ सीखें। उससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण यह है कि स्कूलों में एक ऐसा बदलाव लाया जाए कि वहाँ बच्चे अपने को मिलने वाली सुविधाओं से परिचित हो सकें जहाँ उनके शिक्षा के अधिकार की सक्रियता के साथ सुरक्षा की जाए और उसे आगे बढ़ाया जाए।

3. शिक्षा व्यवस्था से गरीब विद्यार्थियों का बहिष्करण

इस मत के साथ कि सरकारी स्कूल मुख्यत: विभिन्न प्रकार की गरीबी की स्थिति में रहने वाले बच्चों के लिए हैं, इन बच्चों की परेशानियाँ ही व्यवस्थागत सुधार के विमर्श का केंद्र होनी चाहिए। हमें यह स्वीकारना होगा कि स्कूल व्यवस्था गरीबों को भयभीत करने वाली है। जब तक कि वह गंभीरता से उन अवरोधों पर ध्यान नहीं देती जो इन बच्चों के रास्ते में आते हैं, गरीब बच्चे स्कूली व्यवस्था से बाहर होते रहेंगे। इस संदर्भ में निम्नलिखित दिशाओं में प्रयास किए जाने की आवश्यकता है:

3.1 स्कूल में उपस्थिति की समस्या को समझने का प्रयास

समूची स्कूली व्यवस्था इस परिकल्पना पर रची गई है कि परिवारों के पास अपने बच्चों को स्कूल भेजने के साधन तो हैं ही साथ ही वे उन नियमों से निपट पाने में भी सक्षम हैं जिनसे यह व्यवस्था चलती है। इसमें वह क्षमता नहीं है कि यह गरीब परिवारों की अस्थिरता और अनिश्चितता के लिए भी जगह बना सके। कई परिवारों की निरक्षरता बच्चों की स्कूलों में उपस्थिति की अनियमितता को बढ़ाती है और अप्रवासी मजदूरों के मामले में लंबे समय की अनुपस्थिति होती है। कई बार बच्चे की स्कूल में अनुपस्थिति की वजह उसकी खुद की बीमारी या उसके परिवार की बीमारी भी होती है। यह कई बार इसलिए भी होता है कि बच्चे के अभिभावक व्यवस्था की उम्मीदों को पूरा नहीं कर पाते और वे विभिन्न प्रमाण पत्र (जैसे मेडिकल, जन्म-प्रमाण, जाति, स्थानांतरण पत्र) नहीं प्राप्त कर पाते जिनसे कि यह व्यवस्था चलती है या फिर कोई अन्य शैक्षिक सामग्री जैसे कॉपी, स्कूल का बस्ता इत्यादि नहीं खरीद पाते। जब तक स्कूली व्यवस्था गरीबों की परेशानी, समस्याओं को नहीं समझेगी वह कभी भी गरीबों को स्कूल के लिए प्रोत्साहित और परामर्श नहीं दे पाएगी। गरीब और सामाजिक तौर पर हाशिये पर जी रहे समुदायों के अभिभावकों के लिए यह व्यवस्था पराई, अपरिचित और भयकारी लगती है। ये सब मिलकर बच्चे के बहिष्करण को बढ़ावा देते हैं।

3.2 बच्चों के घर के वातावरण को समझना

स्कूली व्यवस्था उन बच्चों के प्रति संवेदनशील नहीं होती जो अलग किस्म के सांस्कृतिक परिवेश से आते हैं। स्कूली व्यवस्था इसमें सक्षम नहीं दिखती कि वह समुदायों की सांस्कृतिक विशिष्टताओं को 'समझ' सके। नतीजतन यह व्यवस्था बच्चों की स्कूल में अनुपस्थिति को स्वीकार नहीं कर पाती। बजाय इसके कि एक ज़िम्मेदार वयस्क की तरह परिवार और अभिभावकों से स्कूल के तौर-तरीकों को मानने के महत्त्व और ज़रूरत पर बात की जाए, होता यह है कि शिक्षकों का बच्चों के प्रति जो रुझान और व्यवहार होता है वह उन्हें विपरीत तरीके से प्रभावित करता है। इस व्यवहार और रुझान का सबसे दुखदायी पहलू बच्चों के आत्मसम्मान और आत्मविश्वास पर पड़ने वाला इसका प्रभाव है जो बच्चों को डरपोक और शंकालु बनाता है। वैसी स्थितियों में जहाँ बच्चे के घर की भाषा और स्कूल की भाषा में फ़र्क होता है, वहाँ समझाना वास्तव में एक बड़ा मसला होता है। वास्तव में स्कूली व्यवस्था स्वयं को प्रेरित करने में तथा बच्चों तक सांस्कृतिक और सामाजिक तौर पर एक संवेदनशील वातावरण के

अंदर ही बच्चों तक पहुँचने में अक्षम पाई जाती है। यह अक्षमता गंभीरता से विचार करने की माँग करती है।

3.3 पहली पीढ़ी के शिक्षार्थियों को निरुत्साहित और अपमानित किया जाना

कई शिक्षार्थी ऐसे होते हैं जिनकी पहली पीढ़ी शिक्षा हासिल कर रही होती है इसलिए उनके अभिभावक उनके स्कूली काम में किसी तरह की मदद कर पाने में सक्षम नहीं होते हैं। बच्चों के लिए इसमें ढलना काफ़ी मुश्किल होता है, वे एक धीरे सीखने वाले बुरे विद्यार्थी के रूप में निरंतर अपमानित होते हैं। वे उत्तीर्ण न हो सकने वाले, न सीखने वाले विद्यार्थी के रूप में वर्गीकृत कर दिए जाते हैं। वे लगातार निरुत्साहित किए जाते हैं और बहुधा अंत में परीक्षाओं में फेल हो जाते हैं। वे पाठ्यपुस्तक, लिखने-पढ़ने का सामान और पोशाक न खरीद पाने और आधिकारिक तथा गैर-आधिकारिक ''स्कूली शुल्क'' न दे पाने की अपनी अक्षमता की वजह से दंडित भी किए जाते हैं। इसके अलावा कई बार उन्हें शारीरिक दंड भी दिया जाता है। ज़ाहिर है कि ऐसे में केवल यही अपेक्षित है कि वे अपने आपको स्कूली व्यवस्था से बाहर धकेले जाने की स्थिति में पाए जाते है।[4]

3.4 शारीरिक और मानसिक चुनौतियों वाले बच्चे

सहयोगी सेवाओं के अभाव तथा भौतिक सुलभता एवं शिक्षण शास्त्रीय रणनीति दोनों मायनों में अगम्यता की वजह से शारीरिक और मानसिक चुनौतियों वाले बच्चे स्कूली-शिक्षा से प्रभावी ढंग से बहिष्कृत कर दिए जाते हैं। उनके सीखने में और स्कूली-शिक्षा की प्रक्रिया में भाग लेने में आने वाले अवरोधों को बमुश्किल ही समझा जाता है। नतीजतन ये बच्चे बिना देखभाल के ही स्कूल से काफ़ी परे रह जाते हैं।

4. स्वास्थ्य और कुपोषण

हालिया साक्ष्य ऐसा दिखाते हैं कि ज़्यादातर गरीब बच्चे कुपोषण का शिकार होते हैं। उनके पास साफ़ पानी, शौच और स्वास्थ्य की देखभाल के लिए सुलभ साधन नहीं होते नतीजतन वे निरंतर बीमार पड़ते रहते हैं जैसे संक्रमण से ग्रसित हो जाना, गहरी खाँसी और सर्दी या फिर दूसरी तरह की नियमित बीमारियों[5] का होना। सरकारी स्कूल के विद्यार्थियों का एक बड़ा हिस्सा गरीबी की परिस्थितियों से आने वाले बच्चों का होता है। खराब पोषण और चक्रीय बीमारियाँ (सफ़ाई की कु-व्यवस्था और स्वास्थ्य सुविधाओं की असुलभता के चलते) नियमित रूप से स्कूल जाने की बच्चों की क्षमता को काफ़ी प्रभावित करती हैं। यद्यपि स्कूल की दिनचर्या में दोपहर का भोजन एक स्वागत योग्य कदम है, लेकिन काफ़ी कुछ किया जाना अभी बाकी है अगर हम खराब पोषण और स्वास्थ्य के शिक्षा पर प्रभाव पर ध्यान देने की ज़रूरत समझें।

4.1 कमजोर सैद्धांतिक ढाँचा

वास्तव में गरीबी से भी ज़्यादा उस ''गरीबी के तर्क'' से कि गरीब बच्चे स्कूल नहीं आ सकते क्योंकि उन्हें कमाना होता है, इन बच्चों को स्कूल में ले जाने वाली कोशिशें हताश होती हैं। यह तर्क इस कदर हतोत्साहित करने वाला होता है कि गरीब बच्चों को प्रतिदिन स्कूली व्यवस्था में वहाँ के इस तरह के माहौल से संघर्ष करना पड़ता है।

4.2 नियम और प्रक्रियाओं में रूढ़िबद्धता (गैर-लचीलापन)

स्कूल के बाहर छूट चुके बच्चों को दुबारा स्कूल से जुड़ने में कई तरह की परेशानियाँ आती हैं। व्यवस्था में

---

4. *झा और झींगरन, एलिमेंट्री एजुकेशन फॉर द पुअरेस्ट एंड अदर डिप्राइव्ड ग्रुप, सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च, नयी दिल्ली 2002 और रामचंद्रन, विमला तथा ई.आर. यू. टीम : स्नैक्स एंड लैडर : फैक्टर इंफ्लुएनसिंग सक्सेसफुल प्राइमरी स्कूल कंपलीशन फॉर चिल्ड्रेन इन पावर्टी कंटेक्सट, साउथ एशियन ह्यूमन डेवलपमेंट सेक्टर, रिपोर्ट नं. 6, विश्व बैंक, नयी दिल्ली 2004*
5. *भारत सरकार, योजना आयोग, मिड-टर्म रिव्यू ऑफ़ नाइंथ फाइव इयर प्लान, नयी दिल्ली 2001 : भारत सरकार, योजना आयोग, रिपोर्ट ऑफ़ द वर्किंग ग्रुप ऑन चाइल्ड डेवलपमेंट फॉर द टेंथ फाइव ईयर प्लान, 2001; वर्ल्ड बैंक, रीचिंग द चाइल्ड : एन इंटीगिरेटेड एप्रोच टू चाइल्ड डेवलपमेंट, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली-2004*

एक तरह की जड़ता होती है तथा उन बच्चों को स्कूल में दाखिला नहीं मिलता जो दाखिले की अंतिम तारीख के बाद आते हैं। इसके अलावा ऐसी कोई तैयारी भी देखने को नहीं मिलती कि उन पुराने बच्चों को जो कभी स्कूल छोड़ चुके होते हैं और दुबारा स्कूल आना चाहते हैं, स्कूल में समायोजित किया जाए। न ही उनके लिए कोई जगह मिलती है जिन्होंने कुछ वर्ष औपचारिक व्यवस्था से बाहर रह कर सीखा है। यह उन बच्चों के प्रति भी गैर-संवेदनशीलता दिखाती है जो औपचारिक धारा में ब्रिज कोर्स, तेज गति से सीखकर और विशिष्ट कक्षाओं के जरिए आते हैं। यह व्यवस्था उन्हें स्कूल में समायोजित होने के लिए आवश्यक समय और अकादमिक सहयोग न देकर, उनका बहिष्कार करती है।

4.3 परीक्षा में फेल होना

गरीब बच्चों के पास कोई सहयोगी व्यवस्था नहीं होती (जैसे ट्यूशन/कोचिंग, घर और स्कूल में पढ़ने-लिखने का वातावरण इत्यादि) ताकि वे जटिल पाठ्यचर्या से अपना तालमेल बिठा सकें, खास तौर से प्रारंभिक और माध्यमिक स्कूल स्तर पर, इसका परिणाम यह होता है कि जो बच्चे बोर्ड परीक्षा देते हैं उनमें 50 प्रतिशत फेल हो जाते हैं। यह परिणाम अपने प्रति एक तरह के निकम्मेपन के बोध से तो भरता ही है साथ ही स्कूली व्यवस्था से बाहर निकलने का कारण भी बनता है।

5. अनुमानित व्यय

गरीब बच्चों के लिए प्रति बच्चा वार्षिक अनुमानित खर्च रुपये 1200 से 1500 रुपये के बीच में है। यह व्यवस्था यह अपेक्षा करती है कि वे बच्चे जिन्हें स्कूल जाने में कठिनाई होती है और जिनके अभिभावक स्वयं भी स्कूल नहीं गए हैं, इतने वार्षिक खर्च में पढ़-लिख सकेंगे। यदि इसकी तुलना मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग से आने वाले बच्चों पर होने वाले खर्च से की जाए तो यह उस राशि के दसवें भाग से भी कम होगा। सभी बच्चे स्कूल में नहीं हैं और न ही सीख रहे हैं, इस चिंता को ध्यान में रखते हुए गरीब बच्चों के लिए अनुमानित खर्च को उपयुक्त ढंग से बढ़ाया जाना चाहिए।

जो अभी भी करना है...

यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि उपरोक्त तमाम अवरोध हटाए जाएँ ताकि स्कूल को स्कूल, शिक्षक को शिक्षक बनाया जा सके और बच्चों को बचपन मिल सके। अगर हम पाठ्यचर्या की रूपरेखा में व्यवस्थागत बदलाव को प्रभावित करना चाहते हैं तो हमें दोनों मसलों का हल निकालना होगा, पहला कि बच्चे कक्षा दस तक स्कूलों में ठहर सकें और दूसरा, स्कूली व्यवस्था को इस बात के लिए तैयार करना होगा कि वह उन तमाम बच्चों को अपना सके और सहयोग कर सके जो कि स्कूल के बाहर हैं ताकि वे स्कूलों में आ सकें।

6. शिक्षकों को निर्णय लेने की अनुमति

शिक्षक अपने पेशेवर होने का दर्ज़ा चुनौतियों की उस दुरूहता से पाते हैं जिसका सामना वे शिक्षा की विशिष्ट प्रवृत्तियों से जूझते समय करते हैं जिसे कि उन्हें प्रत्येक बच्चे को देना होता है ताकि उनके शिक्षा के अधिकार की रक्षा हो सके। ज़रूरत है कि उनके पास इसका निर्णय करने की शक्ति होनी चाहिए कि वे क्या पढ़ाएँ और बच्चों का किस प्रकार मूल्यांकन करें या उनको समझें। यह शिक्षक ही होता है जो बच्चों के द्वारा महसूस किए जाने वाले सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषायी अवरोधों की परेशानियों को सीधे-सीधे महसूस करता है। स्कूल के बाहर के प्रत्येक बच्चे को विद्यार्थी के रूप में बदला ही जाना चाहिए। शिक्षकों को यह व्यावसायिक चुनौती के रूप में ज़रूर स्वीकारना होगा।

शिक्षा के सार्वभौमिकरण का लक्ष्य तब तक नहीं प्राप्त किया जा सकता जब तक कि हमारे पास ऐसे शिक्षक न हों जिनकी निष्ठा संदेहों से परे हो : जिनमें हम पूरी तरह से विश्वास कर सकें।

6.1 शिक्षण पेशे में हो रहे क्षय का सामना

शिक्षक वह धुरी है जिसके इर्द-गिर्द शिक्षा-व्यवस्था घूम रही है। वर्तमान संदर्भ में तेज़ी से बढ़ रही स्कूली व्यवस्था और वित्तीय घाटे (खास तौर से राज्यों में) वाली स्थिति में, समुचित संख्या में शिक्षकों की अनुपलब्धता एक नए तरह

के शिक्षकों के आगमन की ओर बढ़ती है। स्कूली शिक्षकों की सामाजिक स्थिति में तेज़ी से गिरावट आ रही है तथा शिक्षक को सरकारी स्कूल के तमाम कुप्रशासन और बीमारियों के लिए ज़िम्मेदार ठहराया जा रहा है। जबकि इसको पहचाना भी जा रहा है कि शिक्षक का उत्तरदायित्व काफ़ी महत्वपूर्ण मसला है तब एक पेशे के रूप में शिक्षक के पेशेगत चरित्र में जो ह्रास हो रहा है वह निम्न से आंतरिक तौर पर जुड़ा है:[6]

6.2 अपर्याप्त शिक्षक

विद्यार्थी और शिक्षक का अनुपात कई क्षेत्रों में अपेक्षित मानक से काफ़ी नीचे है और अधिकांश शहरी क्षेत्रों के स्कूलों में शिक्षकों की बहुलता है। हालिया आकलन से पता चलता है कि सारे प्राथमिक स्कूलों का 15 प्रतिशत (95,588) एक कमरे में चलने वाले स्कूल हैं – जबकि ग्रामीण क्षेत्रों के हिस्से में एक कक्षा वाले स्कूलों का 95 प्रतिशत है। 17.51 प्रतिशत स्कूलों (1,11,635) के पास केवल एक शिक्षक है। एक शिक्षक वाले 96 प्रतिशत स्कूल ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित हैं। (डी.आई.एस.ई., नीपा 2005)। इसका मतलब यह होता है कि शिक्षकों के पास बच्चों को स्कूल में रखने और उन्हें सिखाने के लिए, जो आवश्यक है उसके लिए न तो समय होता है और न ही ऊर्जा। इसके अलावा राज्य शिक्षा के लिए बनाए मानकों में काफ़ी ढील देते हैं–जैसे प्रति समूह शिक्षक संख्या और उनकी शैक्षणिक योग्यता में भी। यह उनके पेशेगत चरित्र में और ह्रास पैदा करता है।[7]

7. गैर-शिक्षकीय काम

स्कूली शिक्षकों के पास पढ़ाने के अलावा कई और तरह के काम होते हैं जैसे ग्रामीण विकास योजनाओं के लिए आँकड़ों को एकत्र करना, राष्ट्रीय जनगणना, चुनाव के काम और अन्य प्रचार कार्य जो उन्हें ज़िला के अधिकारीगण करने को कहते हैं। इनसे वे कक्षा से दूर होते जाते हैं। एक तरह से यह सब स्कूली शिक्षक के गैर प्रभावी शिक्षण को वैधता देने का काम करते हैं तथा साथ ही उसके पेशे को छोटा बना देते हैं।

---

6. *1950 के बाद से आने वाली लगभग तमाम महत्त्वपूर्ण रपटों में इस बात की महत्ता पर ज़ोर दिया गया है कि पर्याप्त संख्या में शिक्षकों की नियुक्ति होनी चाहिए, शिक्षक बनने के लिए शुरुआती न्यूनतम योग्यता सुनिश्चित की जानी चाहिए, शिक्षकों को अंत:सेवा शिक्षक प्रशिक्षण के माध्यम से अकादमिक सहयोग दिया जाना चाहिए तथा शिक्षकों की नैतिकता और प्रेरणा पर महत्त्वपूर्ण रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। यह नीतिगत दस्तावेज़ों के लिए एक लगातार चलने वाला विषय रहा है जैसे राष्ट्रीय शिक्षा आयोग 1964, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968, 1986 और 1992।1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में एक पूरा खंड है, ''अध्यापक:'' "किसी समाज में अध्यापकों के दर्जे से उसकी सांस्कृतिक-सामाजिक दृष्टि का पता लगता है। कहा गया है कि कोई भी जनता अपने अध्यापकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकती। सरकार और समाज में ऐसी परिस्थितियाँ बननी चाहिए जिनसे अध्यापकों को निर्माण और सृजन की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिले। अध्यापकों को इस बात की आज़ादी होनी चाहिए कि वे नए प्रयोग कर सकें और संप्रेषण की उपयुक्त विधियाँ और अपने समुदाय की समस्याओं और क्षमताओं के अनुरूप नए उपाय निकाल सकें। अध्यापकों को भर्ती करने की प्रणाली में इस प्रकार परिवर्तन किया जाएगा कि उनका चयन उनकी योग्यता के आधार पर व्यक्ति निरपेक्ष रूप से और उनके कार्य की अपेक्षाओं के अनुरूप हो सके। शिक्षकों का वेतन और सेवा की शर्तें उनके सामाजिक और व्यावसायिक दायित्व के अनुरूप हों और ऐसी हों जिनसे प्रतिभाशाली व्यक्ति शिक्षण व्यवसाय की ओर आकृष्ट हों। यह प्रयत्न किया जाएगा कि पूरे देश में वेतन में, सेवा/शर्तों में और शिकायतें दूर करने की व्यवस्था में समानता का वांछनीय उद्देश्य प्राप्त किया जा सके। अध्यापकों की तैनाती और तबादले में व्यक्ति-निरपेक्षता लाने के लिए निर्देशक सिद्धांत बनाए जाएँगे। उनके मूल्यांकन की एक पद्धति तय की जाएगी जो स्पष्ट होगी, आँकड़ों एवं तथ्यों पर आधारित होगी और जिसमें सबका योगदान होगा। ऊपर के ग्रेड में तरक्की के लिए शिक्षकों को उचित अवसर दिए जाएँगे। जवाबदेही के मानक तय किए जाएँगे। अच्छे कार्य को प्रोत्साहित किया जाएगा और निष्क्रियता को निरुत्साहित। शैक्षिक कार्यक्रमों के बनाने और उन्हें क्रियान्वित करने में अध्यापकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका बनी रहेगी।" (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 (1992 के संशोधनों सहित), मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार भाग-9, पृ. 43-44)।*
7. *शिक्षकों की संख्या में लगातार बढ़ोतरी हुई है। प्राथमिक स्तर पर 1990 में इनकी संख्या 16,16,000 थी जो 2001 में 18,96,000 हो गई तथा उच्च प्राथमिक स्तर पर 1990 में 10,73,000 थी जो 2001 में 13,26,000 हो गई। इनमें से 2,59,099 पैरा शिक्षक (ठेके के शिक्षक) जिनमें 67.94 पैरा शिक्षक देश भर के प्राथमिक विद्यालयों में है (स्रोत: अरुण मेहता, डी.आई.एस.ई. डाटा 2003-2004 नीपा 2005)।*

शिक्षक शिक्षा के लिए सिफ़ारिश

- *उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थी कई मायनों में विशिष्ट होते हैं इसलिए उनकी शिक्षा की यह ज़रूरत है कि उनके शिक्षक ज़रूरत के अनुसार प्रशिक्षित हों।*
- *इस समय +2 के शिक्षकों के लिए देश में कोई भी सेवापूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण का कार्यक्रम नहीं है जैसा कि एक समय क्षेत्रीय शिक्षा संस्थानों में 'एम.एससी. एजुकेशन' का कार्यक्रम होता था। ऐसे कार्यक्रमों को बड़े पैमाने पर लाया जाना चाहिए, अगर उपर्युक्त प्रशिक्षित शिक्षक इस स्तर पर पाठ्यचर्या का प्रबंधन कर सकें।*
- *सेवापूर्व स्तर के शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों में 'मार्गदर्शन एवं परामर्श' का एक पर्चा होना चाहिए जिससे कि उन्हें अपने अनुशासन में अपेक्षित अभिमुखीकरण हो सके और प्रशिक्षण मिल सके।*

मानव शक्ति का नियोजन

- *माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षित मानव शक्ति की माँग और उपलब्धता में एक बड़ा अंतर स्पष्ट तौर पर देखने को मिलता है।*
- *ऐसा इसलिए होता है कि न तो कोई ऐसी एजेंसी है, न ही कोई निकायगत तंत्र जिससे पता लगे कि राज्य को किस हद तक अतिरिक्त मानव शक्ति की उपलब्धता स्वीकार है।*
- *प्रशिक्षित मानव शक्ति का आधिक्य सिर्फ़ बेरोज़गारी को ही नहीं पैदा करता है बल्कि प्रबंधन द्वारा यह शिक्षकों के शोषण का कारण भी बनता है।*
- *इस संदर्भ (उपरोक्त) में निजी और सरकारी प्रबंधन में कोई अंतर देखने को नहीं मिलता।*

8. शिक्षा का राजनीतीकरण

पदोन्नति और विशिष्ट काम के संदर्भ में भ्रष्टाचार (स्थानांतरण के लिए या फिर स्थानांतरण रुकवाने के लिए, शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थान में प्रतिनियुक्ति या अन्य मनचाही नियुक्तियों के लिए रिश्वत) और न्यायालय में दायर मामलों से शिक्षक समुदाय का सम्मान काफ़ी घटा है। शिक्षकों के केडर का प्रबंधन राजनीति से बुरी तरह से ग्रस्त हो चुका है जो कि कई राज्यों में नए शिक्षकों की नियुक्ति को गहरे तौर से प्रभावित करता है। कई राज्यों ने तो नियमित शिक्षकों को एक 'मृत प्राय: केडर' मान लिया है – और तर्क यह है कि ठेके पर शिक्षक रखने से वित्तीय और प्रशासनिक सहूलियत रहती है।

9. अनावश्यक किस्म का शिक्षक-प्रशिक्षण

अच्छी शिक्षा के लिए शिक्षक-प्रशिक्षण – बच्चे और उसके शिक्षा के अधिकारों से अलग शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए अपने-आप में एक साध्य है। शिक्षक नियमित रूप से कुछ सूत्र वाक्यों का प्रयोग नारों की तरह करते है – 'बालकेंद्रित शिक्षा', 'खुशनुमा माहौल में सीखना', 'ज्ञान से अज्ञान की ओर' इत्यादि, जिसे वे

कुछ सुझाव

प्राथमिक स्तर पर, स्कूल के पाठ्यक्रम और पाठ्यचर्या को लेकर फैली भ्रांति को हटाने के लिए काम करना चाहिए। इस पर एक सार्वजनिक रूप से जागरूकता होनी चाहिए कि अभिभावक व्यवस्था से यह माँग वैध तरीके से कर सकते हैं - कि बच्चे जो कुछ सीखें वह उसी भाषा और माहौल में सीखें जो उनके लिए कुछ मतलब रखता हो। गरीब बच्चों से जिस उपलब्धि को प्राप्त करने की उम्मीद की जाती है वह अन्य बच्चों के जैसी ही होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि इसे पहचाने जाने की ज़रूरत है कि अपेक्षा का निम्न स्तर या फिर न्यूनतम अधिगम स्तर पर ज़ोर देना इन गरीब बच्चों को फिर से हाशिए की ओर ढकेलेगा।

ग्राम पंचायत इसके लिए तैयार हो कि वह संबंधित अधिकारियों/प्रतिष्ठानों का ध्यान इस ओर दिला सके कि स्कूल के शिक्षकों को स्कूल में शिक्षण करते समय किस-किस तरह के सहयोग की ज़रूरत है।

शिक्षा की गुणवत्ता को सुधारने के लिए मसीहाई अंदाज़, ऊपर से नीचे, नियंत्रित कार्यक्रम न सिर्फ़ गैर-कार्यात्मक हैं बल्कि विपरीतगामी भी है।

शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम के दौरान पूरी तरह से एक अलग और कटे हुए संदर्भ में सीखते हैं। चूँकि ये नारे शिक्षक के खुद के काम की पेशेवराना निष्ठा जैसी किसी जीवंत प्रक्रिया से निकल कर नहीं आते इसलिए बहुधा वे सतही और बेकार साबित होते हैं। शिक्षक जिन विविध प्रकार की परिस्थितियों तथा संदर्भों का सामना करने में व्यस्त रहता है, उसके लिए उसे निर्देशों का अनुकरण करने के बजाय नियमों की रचना करने तथा उपयोग में लाने संबंधी योग्यताओं से लैस होने की आवश्यकता है। उन्हें विशेष परिस्थिति से निपटने के लिए सहयोग और लचीलेपन की ज़रूरत है। प्रशिक्षण कार्यक्रम, सहयोगी तरीके और प्रशिक्षक इन ज़रूरतों का सामना करने के लिए तैयार नहीं हैं।

10. स्कूल : व्यवस्था का एक हिस्सा

भारत में शिक्षा नीति विकेंद्रीकरण और आवास स्थान स्तर पर बनी योजनाओं के नारों के बीच ही व्यक्त होती रही है। नीति के दस्तावेज़ योजनाओं में संदर्भ-विशेष की ज़रूरत को चिह्नित करते रहे हैं। स्थानीय संस्थाओं जैसे स्कूल शिक्षा समिति (स्कूल एजुकेशन कमेटी-एस.ई.सी.), ग्राम शिक्षा समिति (विलेज एजुकेशन कमेटी-वी.ई.सी.), स्कूल प्रबंधन समिति (स्कूल मैनेजमैंट कमेटी-एस.एम.सी.) और चुने गए निकाय जैसे ग्राम पंचायत इत्यादि के जरिए समुदाय की भागीदारी को एक महत्वपूर्ण भूमिका दी गई।

व्यवहार में स्कूल, व्यवस्था का आखिरी छोर होता है जो कि ऊपर से आदेश और निर्देश पाता है। उनसे यह उम्मीद की जाती है कि वे सर्वशिक्षा अभियान के जरिए केंद्र सरकार द्वारा दिए जाने वाले दिशा-निर्देशों का पालन करें। इस संदर्भ में इतना समझना काफ़ी होगा कि जिस मात्रा में पैसा खर्च किया जाता है और बजट के लिए जो प्रक्रिया तय की जाती है वह स्कूल की बौद्धिक-सत्ता और उसके शिक्षकों और बच्चों की ज़रूरतों के लिए बहुत थोड़ी-सी ही स्वतंत्रता छोड़ता है।

पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी के सीखने और स्कूलीकरण की माँग को पूरा करने की प्रक्रिया में एक ठीक-ठाक लचीलापन लाए जाने की ज़रूरत है। शिक्षा विभाग द्वारा प्रशासकीय सुधार और उसमें बदलाव हो ताकि बच्चे सहज महसूस करें यह पाठ्यचर्या की रूपरेखा और अच्छी शिक्षा के प्रावधान की परिभाषा में ही शामिल है। ज़रूरत इस बात की है कि प्रशासकीय दिशा-निर्देश पाठ्यपुस्तकों से संबंधित कामकाज, सामग्री उत्पादन, परीक्षा संचालन और बच्चे के निरंतर मूल्यांकन में लचीलेपन को प्रोत्साहित करें। शिक्षकों के समूह को परीक्षा का कार्यक्रम रचने की और तमाम मध्यावधि हस्तक्षेपों के बीच बच्चे का मूल्यांकन करने की स्वतंत्रता

होनी चाहिए तथा लंबे समय से विलंबित कामों को सूक्ष्म स्तर पर क्रियान्वित किया जाना चाहिए। जहाँ पर इस कदर स्थानीय और सामाजिक बहुलता हो, उस माहौल में ऊपर से नीचे की ओर चलने वाले संरक्षित कार्यक्रम के जरिए हम शिक्षा की गुणवत्ता की बात नहीं सोच सकते।

इसलिए, सबसे पहले अनिवार्य और गैर–समझौतापरक कदम यह होना चाहिए कि भूमिकाओं को लेकर स्पष्टता बने। कक्षा में शिक्षण की प्रकृति के संदर्भ में निर्णय स्कूली शिक्षकों द्वारा लिए जाने की ज़रूरत है – शिक्षा की नौकरशाही में जो लोग ऊपरी स्तर पर हैं उन्हें शिक्षकों की मदद करने के लिए काम करना चाहिए। व्यवस्था में पारदर्शिता होनी चाहिए और सभी भागीदारों के साथ समान रूप से व्यवहार होना चाहिए। ऐसे तरीके स्थापित किए जाने चाहिए ताकि संविधान से किए गए शिक्षा के उद्देश्यों का असमता लिए हुए विश्लेषण और नियमों का स्वार्थपरक सीमित तथा पक्षपाती प्रयोग पहचाने जा सके और उन्हें सप्रयास हटाया जा सके। इससे शिक्षकों का आत्मविश्वास बढ़ना चाहिए ताकि वह बच्चों के संवैधानिक अधिकारों की पूर्ति के लिए नई दिशाओं की खोज कर सकें। राजनीतिक और नौकरशाही संरचनाओं, व्यवस्थाओं तथा व्यक्तियों में दूरदृष्टिता लक्ष्यों और नीति की निरंतरता की आवश्यकता है। बदलाव की प्रक्रियाएँ और सुधारों की योजनाएँ लंबी समयावधि के लिए बनाई जानी चाहिए। उन्हें बार–बार न प्राप्त होने वाले और असंभावित लघु अवधि के परिणामों की अपेक्षाओं तक ही सीमित नहीं होनी चाहिए। इसमें वर्तमान व्यवस्था की उलटी प्रक्रिया शामिल होगी।

11. स्कूल और समुदाय

वर्तमान नौकरशाही व्यवस्था, जैसा कि वह काम करती है, उसकी कोशिश यह होती है कि उसे कड़ी के आखिरी बिंदु स्कूल और शिक्षक को संयोजित करने की कोशिश करनी चाहिए। यह स्कूल के आगे वृहत समुदाय तक नहीं पहुँचती। समुदाय की समुचित भागीदारी सुनिश्चित करने के क्रम में और समुदाय तथा स्कूल के बीच की दूरी पाटने के लिए स्कूल शिक्षा समिति, ब्लॉक शिक्षा समिति, स्कूल प्रबंधन समिति और शिक्षक अभिभावक संघ (पेरेंट टीचर एसोसिएशन–पी.टी.ए.) और गाँव, ब्लॉक और ज़िला स्तर पर बनाई गई स्कूल कलस्टर समितियाँ हैं। व्यवहार में इस नई संरचनात्मक व्यवस्था का इस्तेमाल सरकार द्वारा योजना को कार्यान्वित करने और लागू करने के लिए ही किया जाता है। ये समितियाँ स्कूल भवन के निर्माण और पैरा–शिक्षकों की नियुक्तियों में शामिल होती हैं। यद्यपि ये शिक्षकों और बच्चों की उपस्थिति और नियमितता इत्यादि के निर्णयों में शामिल नहीं होतीं, न ही उन समस्याओं में जिनका सामना बच्चे स्कूलों में करते हैं। उन समस्याओं से भी उनका कोई सरोकार नहीं होता जिनका सामना शिक्षक करते रहते हैं। दिन–प्रतिदिन उठने वाली समस्याओं को लेकर वे अधिकारियों से कोई बातचीत नहीं करते और न ही किसी ऐसे निकाय का चयन करते हैं जो उनका ध्यान बच्चों और शिक्षकों द्वारा महसूस की जाने वाली परेशानियों जैसे पाठ्यपुस्तकों की कमी, भौतिक सुविधाओं और सार्वजनिक परिवहन इत्यादि की ओर दिलाए।

यह ज़रूरी है कि ऐसी संस्थाओं की वास्तविक भागीदारी, अपना होने के बोध के साथ, पर जोर दिया जाए। इस संदर्भ में विकेंद्रीकरण का मतलब यह है कि स्कूल को समुदाय के नज़दीक लाया जाए।

12. विकेंद्रीकृत शिक्षा व्यवस्था

संविधान के 73वें संशोधन ने प्राथमिक और माध्यमिक स्कूली शिक्षा की ज़िम्मेदारी स्थानीय निकायों को हस्तांतरित की है। उसके बाद विभिन्न राज्यों के बीच स्कूली शिक्षा को लेकर स्थानीय निकायों के विकास में किसी तरह की कोई समरूपता नहीं दिखी। यद्यपि कई राज्यों में प्रकार्यों का एक बड़ा समूह प्रत्येक स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं को दिया गया – जबकि व्यवहार में इन पंचायती राज संस्थाओं ने, खास तौर से तालुक और ग्राम पंचायत ने, थोड़े से ही शिक्षा संबंधी कार्य किए हैं। केंद्रीय शिक्षा सलाहकार समिति (केब) ने 1993 में विकेंद्रीकृत प्रबंधन

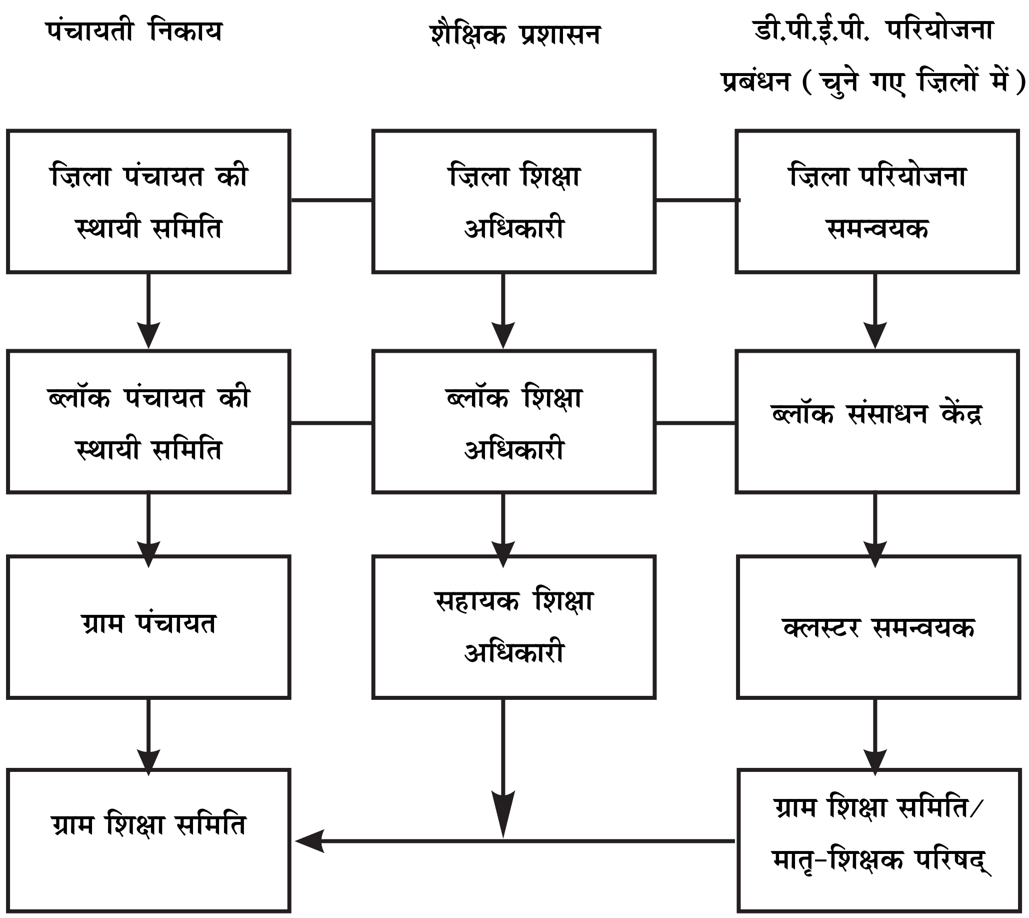
पर एक समिति गठित की थी जिसे 73वें संशोधन के संदर्भ में शिक्षा के विकेंद्रीकरण के लिए दिशा-निर्देश तैयार करना था।[8]

उसमें विभिन्न स्तरों पर कई स्थायी समितियों को बनाने का सुझाव भी दिया था और इन निकायों को समुचित शक्ति, कार्य और उत्तरदायित्व भी दिए गए थे।

यद्यपि व्यवहार में केरल को छोड़कर कहीं वित्तीय-प्रावधान के संदर्भ में प्रक्रिया स्थानांतरण नहीं दिखता है। विकेंद्रीकरण की इस प्रक्रिया में समस्याएँ भरी पड़ी हैं, इसे नीचे दिए गए चार्ट - 1 में देखा जा सकता है -

सिर्फ़ यही नहीं विभिन्न स्तर पर काम करने को लेकर संदिग्धता और दुहराव भी देखने को मिलते हैं। काम के संदर्भ में संदिग्धता और दुहराव का नतीजा यह हुआ कि पंचायती राज की ये संस्थाएँ ''निर्णयकर्ता'' के बजाय लागू करवाने वाली एजेंसियाँ बन गईं तथा जो कर्मचारी उनके अधीन काम करते हैं वे ''कर्ता'' बन गए हैं। इसके अलावा ग्राम पंचायत को शामिल किए बगैर ग्राम स्तर पर समानांतर समितियों के जरिए काम करवाने की प्रवृत्ति ने लोकतांत्रिक ढंग से चुने गए इन निकायों के कद को काफ़ी छोटा किया है। नतीजतन शिक्षा की तंत्रीय व्यवस्था और

चार्ट 1 : स्कूली शिक्षा : उपज़िला और ज़िला स्तर पर संस्थायी संरचनाओं का फैलाव



8. *मानवी मजूमदार, ''डिसेंट्रेलाईजेशन, रिफार्म्स एंड पब्लिक स्कूल, ए ह्यूमन पर्सपेक्टिव'', जर्नल ऑफ़ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन, भाग-17, नं. 4, अक्तूबर 2003, पृ. 481-506*

वास्तविक विकेंद्रीकरण	*बेमानी विकेंद्रीकरण*
• पैसा खर्च करने की शक्ति	• योजना से जुड़े तरीके से खर्च करने की बाध्यता – पैसा खर्च करने पर कोई तार्किक अधिकार न होना।
• पैसा जुटाने की शक्ति • व्यय करने की तार्किक शक्ति • स्टाफ़ को लेने, हटाने और नियंत्रित करने की शक्ति का होना	• प्रति–नियुक्ति स्टाफ–स्टाफ पर कोई नियंत्रण का न होना। • संसाधनों को जुटाने के लिए थोड़ा–सा अधिकार।
• सीधा उत्तरदायित्व	• सीधे उत्तरदायित्व का न होना – किसी अन्य के उत्तरदायित्व का होना।

कार्य करने वालों की भूमिकाओं और कार्यों में दोहराव और अस्पष्टता पाई गई है। पंचायती राज संस्थाओं में भूमिका के बँटवारे को लेकर कोई स्पष्टता नहीं है।

12.1 क्लस्टर, ब्लाक और ज़िला स्तर के मसले

पिछले एक दशक में ज़िला स्तर और स्कूल के बीच जिला प्राथमिक शिक्षा परियोजना (डिस्ट्रिक्ट प्राइमरी एजुकेशन प्रोजेक्ट, डी.पी.ई.पी.) के जरिए स्कूल और पाठ्यचर्या की रूपरेखा को मजबूत करने के लिए संस्थायी संरचनाओं का एक पूरा ताना–बाना बुना गया जिसमें क्लस्टर संसाधन केंद्र, ब्लाक संसाधन केंद्र, ज़िला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान शामिल थे। प्रकट रूप से जिनका उद्देश्य विकेंद्रीकरण के द्वारा शिक्षक और शिक्षक समूहों को सशक्त करना था ताकि वे सभी बच्चों के प्रति स्कूलों द्वारा भूमिका निर्वाह में पूर्ण योगदान दे सकें।

12.2 क्लस्टर संसाधन केंद्र (क्लस्टर रिसोर्स सेंटर–सी.आर.सी)

सी.आर.सी. शिक्षकों के समूह को इस तरह के अवसर देता है ताकि वे नियमित आधार पर आपस में मिलें और अकादमिक मसलों पर चर्चा करें। ये शिक्षक संसाधन केंद्र देश भर में सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत कई स्तरों पर मूर्त रूप से साकार किए जा रहे हैं। इनकी संरचनाओं, स्टॉफ़ रखने के तरीकों और कामकाज में कई विभिन्नताएँ हैं और कुछ राज्यों में इसका प्रतिनिधित्व क्लस्टर समन्वयक या उस व्यक्ति के द्वारा जो किसी विषय में प्रशिक्षित कर सकता है, होता है। वहाँ पर अपने आप में कोई केंद्र नहीं होता। दरअसल व्यवहार में यह देखा जाता है कि ये केंद्र प्रशासकीय संरचना के ही पुच्छले होते हैं जो स्कूल को थोड़ा–बहुत या फिर कुछ भी सहायता नहीं देते। क्लस्टर संसाधन केंद्र के लोग स्कूल शिक्षकों से रिपोर्ट, आँकड़े इत्यादि जमा करने का काम कराते हैं तथा सूचना को ज़िला स्तर पर पहुँचाते हैं। केवल कुछ क्षेत्रों को छोड़कर ऐसा हर जगह होता है।

इन केंद्रों में बुनियादी संरचना और सुविधाओं (लाइब्रेरी, कंप्यूटर, छोटी प्रयोगशाला, .फ़ोटोकॉपी की सुविधा, मीटिंग करने की जगह) के विकास करने की ज़रूरत है जिससे शिक्षक की संसाधन संबंधी आवश्यकताएँ पूरी हों और केंद्र एक ऐसा स्थान बना पाए जहाँ शिक्षकों के अनुभवों को इकट्ठा किया जा सके और पाठ्यचर्या संबंधी विकल्प चुनने में सहायता मिल सके।

कार्यों में अस्पष्टता एवं दोहराव

11वीं अनुसूची	*ग्राम पंचायत*	*तालुक पंचायत*	*ज़िला पंचायत*
शिक्षा, जिसमें प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल भी हों	सार्वजनिक जागरूकता और प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा में भागीदारी को बढ़ाना। प्राथमिक स्कूलों में पूरा नामांकन और उपस्थिति को सुनिश्चित करना।	प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा संबंधी निर्माण को प्रोत्साहित करना, प्राथमिक स्कूल के भवन का निर्माण, मरम्मत और रख-रखाव। युवाओं के क्लब और महिला मंडल के जरिए सामाजिक शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए।	ज़िलों में शैक्षिक गतिविधियों को बढ़ाना जिसमें प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों की स्थापना और रख-रखाव भी शामिल है। आश्रम स्कूलों और अनाथालयों की स्थापना और रख-रखाव। शैक्षिक-गतिविधियों का सर्वे और मूल्यांकन।
तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा		ग्रामीण दस्तकारी और व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ाना।	ग्रामीण दस्तकारी और व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्रों की स्थापना और रख-रखाव। ग्रामीण व्यावसायिक प्रशिक्षण केंद्रों को प्रोत्साहित करना और मदद देना।
प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा	प्रौढ़ साक्षरता को बढ़ाना।	प्रौढ़ साक्षरता को लागू करना।	प्रौढ़ साक्षरता और अनौपचारिक शिक्षा के कार्यक्रम की योजना बनाना और उसको लागू करना।

12.3 ब्लॉक संसाधन केंद्र (ब्लॉक रिसोर्स सेंटर–बी आर.सी)

एक ब्लॉक में आमतौर से 100 से 300 तक प्राथमिक स्कूल होते हैं और लगभग 50-100 मिडिल स्कूल। ब्लाक संसाधन केंद्र की परिकल्पना प्राथमिक स्कूल स्तर पर शिक्षक की क्षमता के विस्तार के लिए की गई थी। लेकिन यह भी केवल आँकड़ों को इकट्ठा करने वाली तथा प्रशासनिक इकाई बनकर रह गई बजाय एक अकादमिक इकाई होने के। एक समूह के रूप में उनके अनुभव को सक्रिय तौर पर आपस में बाँटा जाना चाहिए। स्कूली शिक्षकों के जमीनी अनुभवों को सामने रखकर सी.आर.सी. और बी.आर.सी. के कर्मचारी कभी

कभार ही स्कूलों का दौरा कर उनको अकादमिक सहयोग उपलब्ध करा पाते हैं। वे शक्ति और सत्ता के मद में अक्सर स्कूल निरीक्षक और मूल्यांकनकर्ता की भूमिका अपनाते हैं न कि एक अवलोकनकर्ता और सहयोगी की। उन्हें ऐसा होना चाहिए कि वे अवधारणात्मक समझ दे सकें। इनके द्वारा दिया जाने वाला यह मार्गदर्शन शिक्षक द्वारा दिए जाने वाली गतिविधियों और हस्तक्षेप पर विचार करते वक्त होना चाहिए ताकि इससे बच्चों को मदद मिले।

बी.आर.सी. के संघठन को और उसमें नियुक्त होने वाले व्यक्तियों की भी समीक्षा करने की आवश्यकता है। ब्लॉक में निहित 200 स्कूलों के लिए ऐसे सहयोग की आवश्यकता है जो ऐसी रूपरेखा के अंतर्गत हो जिसमें स्कूल और स्कूली शिक्षक के लिए जीवित संपर्क बन सके। सी.आर.सी. की ही तरह इसे भी बुनियादी संरचना और संसाधनों की ज़रूरत है जिससे यह अनुभवों के सहयोग करने के लिए एक आधार दे सके।

ज़िला स्तर पर ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान तथा ज़िला शिक्षा अधिकारी और डी.पी.ई.पी. के जरिए ये तमाम अनुभव नीतिगत पहलों और बदलावों में दिखने चाहिए। यह सब कुछ शैक्षिक संसाधन, उनकी पूर्ति और तकनीकी तथा प्रशासनिक सहयोग में दिखना चाहिए।

13. ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (डाइट)

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति के बाद और विकेंद्रीकरण को अपनाने के क्रम में प्रत्येक ज़िले में उस ज़िले विशेष की प्राथमिक शिक्षा की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान बनाए गए और शिक्षक शिक्षा महाविद्यालयों (सी.टी.ई.-कॉलेज ऑफ़ टीचर एजुकेशन) तथा उच्च अध्ययन शिक्षा संस्थानों (आई.ए.एस.ई.-इंस्टीट्यूट ऑफ़ एडवांस्ड स्टडीज़) को माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर की शैक्षिक ज़रूरतों के लिए बनाया गया। डाइट की मार्गदर्शिका (1989), डाइट के उद्देश्यों को निम्न तरीके से परिभाषित करती हैं ''ज़मीनी स्तर पर आरंभिक (और प्रौढ़) शिक्षा के लिए चलाए जाने वाले विभिन्न कार्यक्रमों और अपनाई जाने वाली विभिन्न रणनीतियों के लिए अकादमिक और संसाधनों की सहायता प्रदान करना।'' स्थानीयता पर ज़ोर रहा है तथा पाठ्यक्रम में ऐसी इकाइयाँ लाने की बात हुई जैसे - स्थानीय भूगोल, लोकगीत, दंतकथा, परंपराएँ, जंगल, फूल-पत्ते, मेले और त्योहार, जनसंख्या वितरण का विवरण, भूगर्भ विज्ञान, खनिज, खेती, उद्योग, नौकरी पेशा, उद्यम, लोककला, हस्तशिल्प, समुदायों और जनजातियाँ, स्थानीय परिस्थितियों से मेल खाती संस्थाएँ तथा ऐसी नई चीजें विकसित की जाएँ जिन्हें आरंभिक शिक्षा और आरंभिक शिक्षक-शिक्षा प्रशिक्षण कार्यक्रमों में काम में लाया जा सके। वैसे ज़िलों के मामले में जहाँ जनजातियों की आबादी ज़्यादा है, डाइट को कक्षा एक और दो के लिए जनजातियों की भाषा में विशेष (प्राइमर) प्रवेशिका भी बनानी थी।

इनको आकलन और मूल्यांकन की एक व्यवस्था का विकास भी करना था। इन्हें ऐसे तकनीक और दिशा-निर्देश भी तैयार करने थे जिससे कि नियमित और संपूरक (summative) रूप से शिक्षार्थियों का मूल्यांकन किया जा सकता है। इसके अलावा इससे यह भी अपेक्षित था कि यह स्कूलों की इसमें मदद करेंगे ताकि वे परीक्षण, प्रश्नों के बैंक, रेटिंग स्केल, अवलोकन तालिका, निदानात्मक परीक्षण, प्रतिभा पहचान कार्यक्रम की प्रक्रिया इत्यादि को तैयार कर सकें। इन्हें कुछ चयनित निदर्शों (sample) के आधार पर परीक्षण आयोजित कर शिक्षार्थियों के स्तर को भी आँकना था। खासतौर से उस नवीनतम स्तर के संदर्भ में जो प्राथमिक और उसके आगे के स्तरों के लिए निर्धारित हैं और राष्ट्रीय साक्षरता मिशन के तहत प्रौढ़ शिक्षार्थियों के लिए डाइट से यह भी उम्मीद थी कि वे ऊपर वर्णित कार्यों तथा सी.एम.डी.ई. से जुड़े अंत:सेवा कार्यक्रम के लिए कार्यशालाओं का आयोजन करें।

यद्यपि व्यवहार में ये संस्थान न तो अकादमिक सहयोग उपलब्ध करा सके, न ही स्थानीय सामग्रियों को ही बनाया। संसाधनों के अभाव में यह सी.आर.सी. और

वी.आर.सी. से कोई जुड़ाव नहीं बिठा सके और न ही सामग्रियों के विकास में ज़िला स्तर पर कोई नवाचार कर सके। प्रशासकीय समर्थन के अभाव में, इन संस्थानों को कभी इसके लिए प्रोत्साहित नहीं किया गया कि वे समूचे ज़िले के लिए कार्य-योजना बनाएँ। ज़्यादातर ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थानों में स्टाफ़ की भरती प्रतिनियुक्ति के आधार पर होती है जिनको शैक्षिक योजना और स्कूलों के सहयोग के लिए विषय में काफ़ी थोड़ा अनुभव (रुझान) होता है। इन संस्थानों के पेशेवर चरित्र की इस गिरावट का असर उनके काम पर स्पष्ट दिखता है।

14. राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (स्टेट कांउसिल ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग, एस.सी.ई.आर.टी.)

एस.सी.ई.आर.टी. बुनियादी तौर पर राज्य सरकार का संस्थान है लेकिन शिक्षक-शिक्षा की पुनर्रचना और पुनर्गठन की योजना के जरिए भारत सरकार एस.सी.ई.आर.टी. को मजबूत करने के लिए सहयोग मुहैया कराती है। उसमें यह शर्त ज़रूर होती है कि राज्य सरकार भी वैसी ही राशि उपलब्ध कराएगी।

एस.सी.ई.आर.टी. की स्थापना इसलिए की गई कि वह राज्य में अकादमिक नेतृत्व करे और विभिन्न प्रकार के शोध, नवाचार, प्रेरणा, अभिप्रेरणा इत्यादि का केंद्र बने। ये संस्थाएँ गुणवत्ता का प्रतीक हों और समाज के बदलाव के लिए दार्शनिक और समाजशास्त्रीय बोध मुहैया कराएँ।

यद्यपि राज्य-दर-राज्य एस.सी.ई.आर.टी. के उत्तरदायित्व भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन ज़्यादातर राज्यों में ये पाठ्यक्रम की रचना, पुस्तकों को तैयार करने, डाइट का पर्यवेक्षण करने और शिक्षक-प्रशिक्षण का ही काम करते हैं।

इनके काम काज में ऐसा देखा गया है कि एस.सी.ई.आर.टी. अकादमिक लोगों से नहीं बल्कि नौकरशाही प्रकार के नेतृत्व से संचालित होती है। यह सब कुछ योजनाओं और निर्णयों में पूरी तरह से शामिल होता है। इन्हें नाममात्र की स्वतंत्रता है और साथ ही भौतिक सुविधाओं के विकास के लिए बहुत कम राशि ही उपलब्ध हो पाती है। यहाँ तक कि उनके पुस्तकालयों का रख-रखाव और प्रबंधन काफ़ी खराब है। इनका ज़िला इकाइयों और स्कूल स्तर की इकाइयों से काफ़ी कमज़ोर जुड़ाव है। इनके पास इतनी ऊर्जा नहीं होती कि ये विश्वविद्यालयों और अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर होने वाली विचारधारात्मक और सैद्धांतिक बहसों से तालमेल बिठा सकें। आमतौर पर यह गैर सरकारी संगठनों के नवाचारों से भी अपरिचित होते हैं।

यह तय था कि एस.सी.ई.आर.टी. पाठ्यक्रम विकास के लिए एक अग्रणी बिंदु होगी और यह शिक्षकों और स्कूल से गहरे तौर पर जुड़ कर कार्य करेगी। पाठ्यक्रम निर्माण कोई एक बार निपटा दिया जाने वाला काम नहीं है बल्कि निरंतर सीखने और पुनर्विचार करने की चीज़ है जिसे कि सुनियोजित ढंग से आगे बढ़ाया जाता है। केवल वही संस्था जिसमें खुद एक उच्च स्तर की क्षमता हो इस काम को आगे बढ़ा सकती है। एस.सी.ई.आर.टी. को मजबूत करना तथा उसे और ज़्यादा पेशेवराना बनाना संस्थायी बदलाव के लिए एक आवश्यक काम है जिसे तेज़ी से किया जाना चाहिए।

दसवीं पंचवर्षीय योजना के कार्यकारी समूह के सुझाव के मुताबिक इसमें एक तरह की प्रशासनिक, वित्तीय और शैक्षिक स्वतंत्रता की ज़रूरत है। उदाहरण के लिए, एस.सी.ई.आर.टी. को सक्रिय रूप से वार्षिक योजना बनाने में शामिल होना चाहिए। किसी तरह का कोई अस्थायी निर्देश नहीं होना चाहिए, चाहे वह कितने ही बड़े अधिकारी का हो या फिर कितने ही बड़े ताकतवर राजनेता का।

एस.सी.ई.आर.टी. को इतना लचीला और स्वतंत्र होना चाहिए कि वे विश्वविद्यालयी व्यवस्था से विशेषज्ञों को बुला सके तथा स्कूली व्यवस्था में काम करने वाले चिंतनशील कामकाज़ियों के लिए एक मंच मुहैया करा सके। इसके पास एक ऐसी संस्थायी रूपरेखा होनी चाहिए कि वह स्वैच्छिक संस्थाओं को पहचान कर जोड़ सके। इसके साथ ही उन लोगों को भी पहचाने जो सरकारी व्यवस्था के बाहर हैं लेकिन बच्चों की शिक्षा के उद्देश्य को पूरा करने के लिए काम करते हैं, जो सरकारी स्कूलों

में कुछ सफलता के साथ हस्तक्षेप रखते हैं तथा शिक्षकों के सशक्तीकरण में योगदान देते है। इसे अपेक्षित निर्देशों, आदेशों और सुझावों को जारी करना चाहिए ताकि सभी बच्चे स्कूल आ सकें। इसे आकलन की विभिन्न व्यवस्थाओं और परीक्षाओं की व्यवस्था के संदर्भ में ऐसी नीतिगत सिफ़ारिशें करनी चाहिए कि यह विशेष ज़रूरत वाले बच्चों से तालमेल बिठा सके।

अलग-अलग भाषायी, जाति, वर्ग या संप्रदाय के घरों से आने वाले बच्चों की भिन्न पृष्ठभूमियों तथा अनुभवों को कक्षा में पर्याप्त स्थान देना चाहिए। इस समझ को कामकाज का हिस्सा बनाया जाए। इस विभिन्नता को पहचानने और सहयोग देने वाले अकादमिक और प्रशासनिक उपायों को जगह दी जानी चाहिए। एस.सी.ई.आर.टी.के पास स्कूलों, सी.आर.सी., बी.आर.सी. और डाइट से आने वाली माँगों का समुचित और त्वरित उपाय होना चाहिए। एस.सी.ई.आर.टी. के कामकाज को केवल ऐसे थोड़े से रुचिमंद, प्रेरित और सृजनशील लोगों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। ऐसी व्यवस्था स्थापित किए जाने की ज़रूरत है कि संस्था के भीतर और शिक्षकों में सृजनशीलता को बढ़ावा मिले। साथ-ही-साथ वित्तीय प्रावधान लंबे समय के लिए और विश्वसनीय होने चाहिए ताकि संस्था में स्थायित्व और निरंतरता का बोध हो सके।

इसे उन तमाम प्रक्रियाओं को प्रोत्साहन देना चाहिए जो सी.आर.सी., बी.आर.सी. और डाइट द्वारा पाठ्यपुस्तक और अन्य शैक्षिक सामग्रियों को तैयार करने के लिए आवश्यक है। इस क्रम में पाठ्यपुस्तक विकास के लिए इसे खुद अनुसंधान करवाने चाहिए और ज़मीनी स्तर पर चलने वाले ऐसे अनुसंधानों को प्रोत्साहित करना चाहिए ताकि एक विश्व स्तरीय मानक तैयार हो। इसे उन संस्थायी प्रक्रियाओं का समर्थन भी करना चाहिए जिससे शिक्षक, पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तक के विकास की प्रक्रिया से जुड़ सकें। यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि ज़मीनी स्तर पर शिक्षक-प्रशिक्षण और अन्य अकादमिक काम के लिए सभी सुविधाएँ उपलब्ध हों।

इसकी तत्काल ज़रूरत है कि नियुक्ति की प्रक्रियाओं का पुनर्रक्षण किया जाए ताकि खाली जगहों को उपयुक्त उम्मीदवारों से भरा जा सके। हमें रुचि रखने वाले ऊर्जावान पेशेवरों की ज़रूरत है न कि गैर रुचिमंद लोगों की जो देश के बच्चों के लिए काम करने में न तो दक्ष हैं न ही उसमें उनका रुझान है। एस.सी.ई.आर.टी. में अंदर ही सुधार की ज़रूरत है। जब तक कि यह नहीं हो जाता तब तक विभिन्न स्तर पर शिक्षकों की क्षमता और स्कूल की गुणवत्ता में बढ़ोतरी के लिए तेज़ तर्रार और संवेदनशील पेशेवरों की भागीदारी काफ़ी मुश्किल है। प्राथमिक स्कूल को मजबूती देने वाले सक्रिय प्राथमिक शिक्षकों को डाइट और एस.सी.ई.आर.टी. में विशेषज्ञ (संसाधन व्यक्ति) के तौर पर दर्ज़ा मिलना चाहिए।[9]

15. राष्ट्रीय स्तर की संस्थाएँ और नीतियाँ

एन.सी.ई.आर.टी., नेशनल यूनिवर्सिटी ऑफ़ एजुकेशनल प्लांनिग, एंड एडमिनिस्ट्रेशन (न्यूपा), नेशनल काउंसिल ऑफ टीचर एजुकेशन (एन.सी.टी.ई.) जैसी राष्ट्र स्तरीय संस्थाएँ इस उद्देश्य के लिए स्थापित की गई हैं कि ये राष्ट्र में स्कूली शिक्षा की स्थिति सुधारने के लिए मदद करेंगी। इन्हें इस रूप में देखा जाना चाहिए कि ये राज्य स्तरीय संस्थाओं की पार्टनर और सुविधाप्रदायक हों न कि खुद कार्यान्वयन करने वाले। राज्य स्तर की वर्तमान क्षमता और उनके द्वारा किए जाने वाले काम की प्रकृति को देखते हुए ज़रूरत इस बात की है कि ये संस्थाएँ समर्थन करने वाले ऐजेंट और सहयोगी संस्थाओं की तरह काम करें।

इन संस्थाओं को शैक्षिक विचार के अग्रणी मोर्चे पर होना चाहिए जो ज़मीनी हालात की अच्छी पकड़ रखते हुए गुणवत्ता वाले शोध कराएँ। उन्हें उन तमाम विचारों का विश्लेषण करना चाहिए जिनका निरंतर सृजन हो रहा होता है और ऐसे तरीके सुझाए जाने चाहिए जिससे उपयुक्त उच्च गुणवत्ता युक्त शिक्षा को समर्थन मिले। एक निर्धारक (Pace Setting) संस्थान के रूप में उनके पास इसकी

9. *दसवीं पंचवर्षीय योजना के कार्यकारी समूह ने इसमें से कुछ सिफ़ारिशें दी हैं।*

क्षमता और दक्षता होनी चाहिए कि वे स्वयं की समालोचना कर सकें।

चूँकि उन्हें तालुक और ग्राम स्तर की संस्थाओं के कामकाज के लिए उत्तरदायी होना चाहिए इसलिए राष्ट्रीय संस्थानों को इन जगहों की स्थितियों के बारे में पता होना चाहिए। यह जुड़ाव शिक्षा के विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से वास्तविक संपर्क और जुड़ाव के कारण चाहिए न कि आँकड़ों और लिखित रिपोर्टों की शर्तों पर। इसलिए इन संस्थानों को ऐसे कार्यक्रम की आवश्यकता है जो उन्हें सीधे-सीधे इसमें शामिल करें और ऐसी विधियों और विचारों को तलाशें जिसका व्यापक आधार हो और बड़ी संख्या में स्कूलों और शिक्षक-प्रशिक्षक संस्थाओं तक फैलाव हो सके। प्रसार और वितरण की प्रक्रिया समर्थन करने वाली हो ताकि यह कई तरह के सुझाव और सहयोग दे सके न कि सिर्फ़ निदानात्मक मात्र रहे।

राज्य स्तर पर विकेंद्रीकरण और अकादमिक क्षमता के निर्माण के क्रम में एक संभावना बनी है और स्थानीय स्तर पर योजना और काम करना संभव हुआ है। इसलिए ज़रूरी है कि व्यवस्था में प्रत्येक स्तर पर क्षमता बढ़ाई जाए। अगर सभी काम को केंद्रीय संस्थानों द्वारा किया जाना है और पाठ्यपुस्तक, शोध-पत्र, पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम के दिशा-निर्देश इत्यादि को केवल राष्ट्रीय स्तर के निकायों द्वारा तैयार किया जाना है तो विकेंद्रीकरण की कोई आवश्यकता नहीं है और न ही यह प्रभावी होगा। होना तो यह चाहिए कि राष्ट्रीय संस्थान राज्य को इन तमाम चीज़ों में उसकी क्षमता के विकास में योगदान दें और एक मंच की तरह काम करें जहाँ विभिन्न विचारों का विलयन हो। एन.सी.ई.आर.टी. की भूमिका ऐसी होनी चाहिए कि वह राज्यों को उनकी पाठ्यपुस्तकों के बनाने में मदद करे। इस संस्थान की यह ज़रूरत है कि यह केंद्रीकरण को घटाए और सबको दिशा-निर्देश देने से बचे। ज़रूरत यह है कि यह बेहतर अवधारणाओं और प्रक्रियाओं का विकास करे जिसके जरिए राज्य स्तर के लोग इतने सक्षम हो सकें कि वे अपने उत्तरों को स्वयं तलाश सकें। वर्तमान व्यवस्था प्रोत्साहित करने के बजाय लोगों को हतोत्साहित करती है कि वे अपनी समस्याओं का हल स्वयं ढूँढ़े तथा उनसे उम्मीद यह होती है कि वे उस उत्तर का पालन करें जिसे राष्ट्रीय संस्थाएँ सुझाती हैं। शोध के लिए राज्य की संस्थाएँ केवल आँकड़ों को इकट्ठा करने के काम में आती हैं या फिर उस अध्ययन के प्रबंधन में जिसके उद्देश्यों का पता केवल राष्ट्र स्तर की संस्थाओं को होता है।

एन.सी.ई.आर.टी. के लिए यह ज़रूरी है कि वह अपने विभिन्न संकायों की नए सिरे से तैयारी करवाए तथा ज्ञान को एक तैयार माल की तरह न देखा जाए जिसे पदोक्रम में ऊपर से नीचे की ओर जाना है। स्कूली और शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं से गहरे जुड़ाव के अलावा इन राष्ट्रीय संस्थाओं के लिए यह ज़रूरी है कि वे ऐसे मंचों का विकास करें जो शिक्षा के मसले को और विस्तार देने का काम करें। इन मंचों में विश्वविद्यालय के लोगों, शिक्षा के लिए काम करने वाली शैक्षिक संस्थाओं, अन्य रुचिमंद लोगों तथा स्कूल के शिक्षकों को शामिल किया जा सकता है। इन मंचों से यह उम्मीद की जानी चाहिए कि वे मसलों पर बातचीत केवल अपने बीच में न करें बल्कि वे राज्य की मदद के लिए भी उपलब्ध हों, खासतौर से पाठ्यपुस्तक सुधार की कोशिशों और अन्य प्रक्रियाओं में।

ज़रूरत इसकी भी है कि राष्ट्र स्तर की ये संस्थाएँ नियुक्तियों, पदोन्नति और भूमिका के चयन के स्वयं के तरीकों की समीक्षा करें। यह समीक्षा संगठन में काम करने वाले व्यक्तियों के तथा संगठन के स्वयं के परिप्रेक्ष्य में की जानी चाहिए। प्रवेश के लिए पार्श्व (lateral) रास्तों को खोला जाना चाहिए और उन लोगों को भी मौका मिलना चाहिए जिन्होंने ज़मीनी स्तर पर काम किया है, ताकि वे राष्ट्रीय संस्थानों को एक नियत समय दे सकें। यह सब राष्ट्रीय संस्थानों को, जो कि ज़मीनी वास्तविकताओं से कटे हुए हैं, अनिवार्य अपेक्षित ऊर्जा देगा।

इसे क्रमिक कार्यशालाओं और संगोष्ठियों के माध्यम से, व्यवस्थागत सुधार और प्रक्रियाओं संबंधी अच्छे प्रचलनों को सामने लाना चाहिए। इसे शिक्षा के सचिवों, स्कूली शिक्षा के प्रमुखों, को सूचित करना चाहिए।

एस.सी.ई.आर.टी. और सर्व शिक्षा अभियान को दूसरे अन्य जगहों पर किए जा रहे नवाचारों के बारे में अनिवार्य रूप से जानकारी देनी चाहिए और एक 'शिक्षायी-खबरी' (Education Watch) वाली संस्था की तरह काम करना चाहिए।

एन.सी.ई.आर.टी. को पाठ्यचर्या के विभिन्न पहलुओं पर अध्ययन आयोजित कराने चाहिए तथा इन अध्ययनों को स्कूल स्तर पर प्रचारित और प्रसारित (disseminate) करना चाहिए। इसे सामाजिक-आर्थिक कारक और नीतियों को लागू करने के संदर्भ में गुणवत्ता के सूचकांक को विकसित करने का काम भी अनिवार्य रूप से करना चाहिए।

केंद्र स्तर पर शिक्षा मंत्रालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि **आर्थिक मदद पहले से अंदाज़ लगाए जा सकने वाले तरीके से और बिना किसी व्यवधान के मिले जिसमें एक दीर्घकालिक वादा भी शामिल हो।** इस स्थानीय पहल का सम्मान करना चाहिए तथा धन किस तरह से खर्च हो इसके संदर्भ में विस्तृत निर्देश और मार्गदर्शन को रोका जाना चाहिए। यह शिक्षकों के सशक्तीकरण और सृजनात्मकता के विरुद्ध जाता है।

16. समानांतर संरचनाएँ एवं व्यवस्थाएँ

नब्बे और अस्सी के दशक ने सार्वभौमिकरण की चुनौती को संबोधित करने के लिए केंद्र द्वारा समर्थित योजनाओं एवं परियोजनाओं[10] (जिनमें से कइयों को वित्त देश से बाहर के दाताओं ने दिया) की एक श्रृंखला का उदय देखा। यह स्वायत्त निकाय थे जो सोसाइटी रजिस्ट्रेशन एक्ट के तहत पंजीकृत थे तथा सरकार के विभिन्न कामकाजी ढाँचे द्वारा चलाए जा रहे थे। ऐसी उम्मीद थी कि यह ढाँचा/संरचना में लचीलापन, उदारता और निष्पक्षता उपलब्ध कराएगा तथा यह सुनिश्चित करेगा कि किसी परियोजना विशेष के लिए आया पैसा 'सुरक्षित' रहे और राज्य के सामान्य राजकोषीय खाते द्वारा न सोख लिया जाए। इसे दूरदराज़ के इलाकों में बच्चों तक अर्द्धपेशेवर शिक्षकों द्वारा पहुँच बनाने तथा लड़कियों को अभिप्रेरित करने के लिए एक आवश्यक यांत्रिक व्यवस्था के रूप में देखा गया। आम समुदाय की गतिकी के साथ तालमेल बिठाने के लिए प्रशिक्षण एवं संसाधनों के अतिरिक्त ढाँचों को स्थापित किया गया क्योंकि ऐसा समझा गया था कि उपस्थित विद्यमान विभागीय ढाँचे नियमित रूप से गहन प्रशिक्षण को आयोजित करने में अक्षम थे। इस संदर्भ में विभिन्न राज्य स्तरीय संरचनाओं के अनुभव एक परेशान कर देने वाली मिलीजुली तसवीर पेश करते हैं। मुख्यधारा के शिक्षा विभागों के साथ इन संरचनाओं अथवा ढाँचों का जुड़ाव कमतर होता गया। पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने, शिक्षक-प्रशिक्षण तथा सूक्ष्म स्तरीय योजना हेतु परियोजना स्तर की कोशिशों से एस.सी.ई.आर.टी. को दरकिनार कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वायत्त संस्थाओं द्वारा अनुभवी पेशेवरों तथा प्रशासकों को ले लिए जाने के कारण औपचारिक तंत्र अंततः कमज़ोर पड़ गया।

शैक्षिक योजना तथा नीति निर्माण की प्रक्रिया का एक लंबा इतिहास है जो लंबे समय में एक जैविक प्रक्रिया के रूप में विकसित हुआ है। इस प्रकार आयोगों तथा संस्थाओं के अनुमोदनों एवं सुझावों में उन नीतियों को समझा गया, जिन्होंने शैक्षिक योजनाओं की स्थिति की

10. *1987 और उसके बाद औपचारिक प्रशासनिक संरचना के बाहर 'सबके लिए शिक्षा' (एजुकेशन फॉर ऑल - ई.एफ.ए.) की परियोजना को लागू करने के लिए कुछ अर्द्धसरकारी किस्म के निकाय बनाए गए, ये निम्न हैं:*
राजस्थान शिक्षाकर्मी परियोजना, 1987 (पहले सीडा ने वित्त मुहैया कराया फिर डी.एफ.आई.डी. ने)
बिहार शिक्षा परियोजना, 1991 (यूनिसेफ द्वारा समर्थित)
राजस्थान लोक-जुंबिस परियोजना, 1992 (पहले सीडा फिर डी.एफ.आई.डी. द्वारा समर्थित)
उत्तर प्रदेश बुनियादी शिक्षा परियोजना, 1992 (विश्व बैंक द्वारा समर्थित)
ज़िला प्राथमिक शिक्षा परियोजना (डी.पी.ई.पी.), 1993 (कई दाताओं द्वारा समर्थित जिसमें विश्व बैंक, यूरोपियन कमीशन, डी.एफ.आई.डी., नीदरलैंड सरकार और यूनिसेफ शामिल हैं)

आलोचना की तथा समय-समय पर निदानात्मक कदम प्रस्तुत किए। शैक्षिक योजना का यह इतिहास जिसमें निरंतरता थी तथा जो सार्वजनिक/जन बहस तथा संस्थायी निर्माण की जैविक प्रक्रिया के तौर पर विकसित हुआ था, उसे केवल धन से चलने वाली समानांतर संस्थाओं को स्थापित करके नज़रअंदाज़ कर भंग कर दिया गया। विसंगति यह है कि इन समानांतर संरचनाओं ने न केवल औपचारिक और मुख्यधारा की संरचनाओं के मनोबल एवं दक्षता पर नकारात्मक प्रभाव डाला बल्कि परियोजनाओं को समेट देने के बाद इन 'नवाचारों' से सीखना भी विलुप्त हो गया।

16.1 अल्पकालिक परियोजनाएँ बनाम दीर्घकालिक दृष्टिकोण

शिक्षा के लिए योजना बनाने हेतु कई पीढ़ियों के दीर्घकालिक दृष्टिकोण का समन्वय आवश्यक है। गत दशक में, निश्चित अवधि की परियोजनाओं ने दीर्घकालिक नीतिगत परिदृश्य और अल्पकालिक परियोजनात्मक रणनीतियों के मोड़ पर इसे प्रतिस्थापित किया। राज्य सरकारों के ढाँचागत विकास को दरकिनार कर विदेशों से समर्थित परियोजनाओं ने इन सरकारों पर मशीनीकृत ढंग से अपने लक्ष्य प्राप्त करने के लिए दबाव बनाया। जो कुछ भी हुआ वह था सिर्फ़ अस्थायी खर्च जो कि ऊर्जावान अधिकारियों, जो एक समानांतर व्यवस्था के प्रमुख थे या शिक्षा सचिव के द्वारा। इसका नतीज़ा यह रहा कि संस्थाओं को गैरसंस्थायी निर्णय प्रक्रियाओं को अपनाने के लिए मज़बूर होना पड़ा। कई राज्यों ने धन-संसाधन को स्कूलों, डाइट और एस.सी.ई.आर.टी. में अध्यापकों को अनुबंधित करने पर व्यय किया और अनुपयोगी उद्देश्यपूर्ति के लिए इस मूल्यवान संसाधन का अपव्यय किया।

इसने सी.आर.सी./बी.आर.सी./डाइट और एस.सी.ई.आर.टी. जैसी संस्थाओं की नीरवता को बढ़ावा दिया और इन्हें मात्र सरकार का आदेश अनुपालन करने वाले दफ़्तरशाही ढाँचों में तब्दील कर दिया। स्व-अभिप्रेरण, खोज, विश्लेषण और नवाचार के अभाव में ये संस्थाएँ किन्हीं अन्य नियोजित कार्यक्रमों का क्रियान्वयन मात्र करने लगीं। इस परिस्थिति में ये संस्थाएँ स्वयं को अध्यापकों और स्कूलों के अनुरूप नहीं ढाल पाईं। वस्तुत: ये संस्थाएँ अध्यापकों और स्कूलों को लेकर अपने 'अंतर्गत' एक पदानुक्रम और गैर-लोकतांत्रिक माहौल पनपाती रहीं।

इस परिस्थिति में यह पूछे जाने की आवश्यकता है – कौन किसके प्रति जवाबदेह है। इस समय सबसे बड़ी चुनौती एक ऐसी 'जवाबदेह' व्यवस्था का निर्माण करना है जो **अंतत: बच्चों और उनके परिवार के प्रति जवाबदेह हो;** उसे प्रत्येक बच्चे के गुणवत्ता शिक्षा के अधिकार को साकार करने के लिए जवाबदेह माना जाए।

17. संसाधन और वित्तीय अवरोध

शिक्षा के लिए संसाधनों को लेकर गहरे पड़ताल की ज़रूरत है। किस हद तक पैसा दिया जाए और शिक्षा के सहयोग के कितने अंश को मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा बनाई गई समिति की विस्तृत रिपोर्ट / आकलन का हिस्सा होना चाहिए। वित्तीय राशि के दिए जाने के तरीकों और खर्च करने के तरीकों का निरीक्षण और उपयोग का लेखा-जोखा इत्यादि पर गहरे तौर से विचार करने की ज़रूरत है। वर्तमान प्रक्रियाओं में नियम और मानकों पर ज़्यादा बल है बजाय काम की गुणवत्ता और प्रकृति के। व्यवस्था जिस तरह विभिन्न प्रकार की स्थितियों में काम कर रही है वहाँ ज़्यादा लचीले और संवेदनशील मानकों की सख्त ज़रूरत है।

इस फोकस समूह ने यह महसूस किया कि राज्य सरकार और केंद्र सरकार के बीच खर्च की जाने वाली राशि के बँटवारे की जाँच की जानी चाहिए। चूँकि केंद्र द्वारा दिया जाने वाला वित्तीय सहयोग पहले से तय केंद्र समर्थित योजनाओं (सेंट्रली स्पांसर्ड स्कीम-सी.एस.एस) के साथ बँधा होता है इसलिए राज्य सरकार को सार्वभौमिक शिक्षा के लिए अपेक्षित वित्त को लेकर समझौते करने पड़ते हैं खासतौर से तब जबकि ज़्यादातर राज्य सरकारें गहरी आर्थिक तंगी से गुज़र रही हैं। इसकी वजह से राज्य सरकार उन गतिविधियों को जारी नहीं रख पाती जो समयबद्ध परियोजनाओं से जुड़े होते हैं।

इस समूह ने वित्तीय प्रक्रियाओं में रूढ़िबद्धता के मसले पर काफ़ी सोचा-विचारा, खास तौर से एक इकाई के लिए होने वाले खर्चे पर और अर्थपूर्ण गतिविधियों को शुरू करने की क्षमता पर पड़ने वाले प्रभाव पर। भारत सरकार की योजनाओं जिसमें सर्वशिक्षा अभियान भी शामिल है, से इकाई खर्चे की जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए, 70 रुपये प्रति दिन प्रत्येक शिक्षक के प्रशिक्षण के लिए, ब्रिज कोर्सों की संख्या और ब्रिज कोर्स में बच्चों की संख्या, आवासीय ब्रिज कोर्स के लिए इकाई खर्च और गैर आवासीय ब्रिज कोर्स के लिए इकाई खर्च, मॉडल क्लस्टर स्कूल को एन.पी.ई.जी.ई.एल कार्यक्रमों में (एस.एस.ए.का एक कार्यक्रम) अनिवार्य रूप से शामिल कर लेना, यह सब कुछ सारे देश में समरूप-सा है और प्रति इकाई तय खर्चे के मुताबिक ही यह राशि खर्चे के लिए दी जाती है। इकाई आधारित खर्चे की सीमाओं को समझा जाना चाहिए ताकि संस्थाएँ अपनी गतिविधियों को प्रभावशाली ढंग से चला सकें। यह दूरदराज के और जनजातीय इलाकों में विभिन्न समुदायों और सामाजिक समूहों के लिए कुछ स्थितियों में खास महत्त्व रखता है।

अपने जैसे विशाल और भिन्नता वाले देश में इकाई खर्च समरूप नहीं हो सकता। किसी शिक्षक को प्रशिक्षित करने के खर्चे घट-बढ़ सकते हैं, जो इस पर निर्भर करता है कि प्रशिक्षण का काम कहाँ हो रहा है तथा इसमें क्षेत्र विशेष में आवा-जाही के खर्चों का अंतर भी शामिल है। साथ ही ब्रिज कोर्स को चलाने या लड़कियों की शिक्षा की बढ़ोतरी के लिए गहन गतिविधियों को आयोजित करने का खर्चा देश के अलग-अलग कोनों में एक-सा नहीं हो सकता। इकाई खर्चे द्वारा योजना संचालन का प्रभाव काफ़ी गहरा है। सर्व शिक्षा अभियान की योजनाओं को इस तरह तोड़ा-मोड़ा गया कि वह समरूप इकाई खर्च में फिट हो सकें। इस अटपटी स्थिति को एक व्यावहारिक ज्ञान से सुलझाए जाने की ज़रूरत है। कार्यक्रम की रचना में क्षेत्र विशेष और विशिष्ट समुदाय के शिक्षकों की ज़रूरत को अनिवार्य रूप से आधार बनाया जाना चाहिए।

इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि 'इकाई खर्च' चलाई जाने वाली विभिन्न प्रकार की गतिविधियों को सीमाबद्ध करता है। कार्यक्रम के उद्देश्य जैसे गुणवत्ता का विकास, सारे बच्चों को स्कूल में लाना इत्यादि में कई सारी गतिविधियाँ जुड़ी होती हैं। यह काफ़ी मुश्किल है कि हम उन तमाम गतिविधियों का आकलन पहले से ही कर लें और उनके खर्चे का हिसाब पहले ही लगा लें। चूँकि इकाई खर्चा कुछ गतिविधियों को तो परिभाषित करता है अन्य को नहीं इसलिए यह सब कुछ अन्य तमाम गतिविधियों को ही छोड़ने की तरफ़ बढ़ाता है। यह कार्यक्रम में नवाचारी और नई उभरती ज़रूरतों पर पहल करने की क्षमता को घटाता है। इकाई-खर्चा, योजना को यांत्रिक ढंग से लागू कराने की ही एक पहल लगती है। जिसमें बड़ी संख्या में बाधाएँ आती हैं और जिसे ज़्यादा कल्पनाशील तरीके से सुलझाया जा सकता है।

कई बार यह तर्क दिया जाता है कि ये इकाई खर्चे केवल 'सांकेतिक' (indicative) होते हैं, लेकिन होता यह है कि ये ज़िला योजनाओं और वित्तीय आकलन के लिए मानदंड का काम करते हैं।[11] इसलिए सरकारी अधिकारी उन गतिविधियों को स्वीकृति के समय वरीयता देते हैं जिसके लिए इकाई खर्च का आकलन पहले से मौजूद होता है। उन महत्त्वपूर्ण गतिविधियों की स्वीकृति को टाल देना ही बेहतर समझते हैं जिनके लिए इकाई-खर्चा नहीं दिया होता है या ये खर्चे अनुपयुक्त होते हैं। क्योंकि ऐसी स्थिति में लेखा-विभाग की आपत्तियाँ आ सकती हैं। यह भी तर्क दिया जाता है कि इकाई-खर्चे की ज़रूरत इसलिए है कि शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए ज़रूरी वित्तीय प्रावधान का आकलन हो सके। बेशक शिक्षा के सार्वभौमिकरण हेतु ज़रूरी राशि का

11. *ज़िला और राज्य के सर्वशिक्षा अभियान का योजनाओं का, एड-सिल, एन.सी.ई.आर.टी. और न्यूपा के संकाय-सदस्यों द्वारा पूरी तरह से इकाई खर्चे के आधार पर आकलन किया जाता है। इसे एक मजबूरी की तरह समझे जाने की ज़रूरत है और इसकी कोशिश की जानी चाहिए कि 'इकाई खर्चे' पर आधारित स्वीकृति के बजाय उन प्रक्रियाओं को अपनाया जाए जिससे राज्य सरकारों पर विश्वास किया जाए तथा उन्हें अपनी योजनाएँ खुद बनाने हेतु, सशक्त किया जाए।*

आकलन विभिन्न गतिविधियों के इकाई-खर्चे के मोटे अनुमान से लगाया जाता है। हालाँकि इसका मतलब यह नहीं होना चाहिए कि इस आकलन के साथ लागू करने संबंधी एक सटीक दिशा निर्देश भी हो। उदाहरण के लिए, जब शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए शिक्षक के वेतन की गणना की जाती है तो उसका आकलन 8000 रुपया प्रतिमाह प्रति शिक्षक किया जाता है। हालाँकि शिक्षक का वास्तविक वेतन काफ़ी अलग-अलग होता है जो कि राज्य सरकार के वेतनमान, वरीयता और अन्य भत्तों पर निर्भर करता है। इसलिए गणना के लिए विकसित किए गए नियमों को इकाई खर्चे के आधार पर लागू नहीं किया जा सकता। यही तर्क अन्य गतिविधियों, जैसे शिक्षक-प्रशिक्षक, समुदाय को संवेदनशील बनाने इत्यादि पर भी लागू होता है।

इकाई-खर्चे को वरीयता देने का एक कारण यह भी है कि इससे वित्तीय अनुशासन और उत्तरदायित्व बना रहता है। यद्यपि जब देश भर के लिए इकाई-खर्चे को तय किया जाता है तो इसका प्रभाव ठीक उलटा होता है, अधिकांश स्वीकृत राशि का इस्तेमाल तब होता है जब इसकी ज़रूरत नहीं होती। गतिविधियों की इस तरह रचना करना कि वे इकाई-खर्चे में समा सकें दरअसल वित्तीय संसाधनों की बर्बादी है।

चूँकि केंद्र समर्थित अलग-अलग योजनाएँ लगातार बन रही हैं, इसके साथ ही यह ज़रूरी है कि अलग-अलग तरह की गतिविधियों को अपनाया जाए। इस कारण यह भी ज़रूरी है कि इकाई-खर्चे को तय करते समय इसकी धारणा पर पूर्ण विचार करें। ऐसा करने के लिए ज़रूरी है कि वित्तीय उत्तरदायित्व के लिए ज़्यादा लचीले उपायों को सुनिश्चित किया जाए और अगर इकाई-खर्चे का इस्तेमाल करना है तो ज़रूरत यह है कि इसे ऐसा बनाया जाए कि यह राज्य स्तर के बजाय और ज़्यादा छोटी इकाइयों के लिए हो। डी.पी.ई.पी. में ज़िलों को इस बात की अनुमति थी कि वे अपनी गतिविधि विशेष के लिए इकाई खर्चे को तय करने का उपाय करेंगे। यह कार्यक्रम आयोजकों और नियोजनकर्ताओं को इसका अवसर देता था कि वे किसी खास समस्या से जूझने के लिए अलग-अलग कई प्रकार की रणनीतियों का खयाल रखें बजाय इसके कि समूचे भारत के लिए एक ही इकाई-खर्चा रखा जाए।

कार्यक्रम को बेहतर तरीके से लागू करने के लिए यह सिफ़ारिश करना ज़रूरी है कि **किसी भी विशिष्ट गतिविधि के लिए इकाई-खर्चा को स्थानीय स्तर पर तैयार किया जाए** बजाय राष्ट्रीय स्तर के। इस तरह के इकाई खर्चा की छँटनी के लिए ऐसा तंत्र स्थापित किया जा सकता है जो वित्तीय उत्तरदायित्व को सुनिश्चित करे।

18. शिक्षा सेवाओं का व्यवसायीकरण (पेशेवर प्रवृत्ति का विकास)

आज शिक्षा के क्षेत्र में पेशेवर रुख की सिरे से कमी है, खासकर स्कूल के अध्यापक से लेकर उन संस्थाओं तक में जो कि शैक्षिक आधार प्रदान करने के उद्देश्य से बनी थीं। यह भी आवश्यक नहीं है कि स्टाफ़ का चयन उनकी शैक्षिक रुचि या प्रवीणता के आधार पर ही किया जाता हो। इसीलिए यह आवश्यक है कि स्टाफ़ और अन्य कर्मचारियों के लिए चयन नीति और क्षमताओं को बढ़ाने पर ध्यान दिया जाए। साथ ही प्रक्रिया के सभी स्तरों पर आवा-जाही पार्श्विक संबद्धता (lateral linkage) हो और राष्ट्रीय, राज्य, ज़िला, ब्लाक, क्लस्टरों में पार्श्विक और ऊर्ध्व दोनों ही दिशाओं में विचारों और अनुभवों का क्रमबद्ध आदान-प्रदान हो। इसके लिए आवश्यक है कि स्थानीय अधिकारियों को अपने उच्च अधिकारियों की तुलना में यथायोग्य लचीलापन और स्वायत्तता मिले जिससे कि सभी भागीदारों में समीक्षा और पुनर्बलन की प्रक्रिया के सृजन से जनित बौद्धिक क्षमताओं का संवर्द्धन हो सके।

इस तरह का बहुस्तरीय हस्तक्षेप स्कूलों के लिए सामुदायिक सहयोग, सभी स्तरों के पंचायती राज्य संस्थाओं का मुखर सहयोग और ज़िला और उपज़िला स्तरों पर तकनीकी और शैक्षिक समर्थन पर निर्भर है। यह संचालन में सुधार और दावेदारों से परामर्श करने की नई प्रक्रियाओं को जोड़े जाने की अपेक्षा रखता है। इसका परिणाम विद्यालयी शिक्षा का सार्वभौमिकरण होना चाहिए जो कि तकनीकी और शैक्षिक विशेषज्ञता पर निर्भर हो।

19. इस फ़ोकस समूह का परिप्रेक्ष्य : संक्षेप

हम नई संस्थाओं की स्थापना और पुरानी संस्थाओं को गिराने की बात नहीं रख रहे हैं। यह बात जरूर है कि गंभीरता और उत्साह से प्रयास किए जाएँ ताकि:

1. **बहिष्करण की संरचनाओं के विरुद्ध सक्रियता से काम किया जाए जिससे कि स्कूलों में बच्चों की पूरी भागीदारी हो सके।** स्कूल ये सुनिश्चित करें कि प्रत्येक बच्चे की स्कूली जीवन तक पहुँच हो। उन्हें उनको प्रोत्साहित करना चाहिए और सुविधाएँ देनी चाहिए जो स्कूल छोड़ गए हैं या फिर बाहर धकेल दिए गए हैं ताकि वे वापस आ सकें। वे यह सुनिश्चित करें कि बच्चे कम-से-कम कक्षा दस तक नियमित शिक्षा पा सकें।
2. **स्कूल निश्चित तौर पर बाल केंद्रित हों** और बच्चे की बेहतरी के लिए काम करें ताकि बच्चे अपनी पूरी क्षमता को साकार कर सकें। स्कूल निश्चित तौर पर मुकम्मल हों- उनके स्वास्थ्य को लेकर, पोषकता के स्तर को लेकर, और उनके अच्छे बनने को लेकर। स्कूल के सरोकारों में यह भी शामिल है कि यह समझा जाए कि स्कूल आने से पहले बच्चों के साथ क्या हुआ है और स्कूल छोड़कर जाने के बाद क्या होगा। स्कूल विविधता की अनिवार्य रूप से कद्र करें और सभी बच्चों (लड़कियों, कामकाजी बच्चों, विशेष आवश्यकता वाले बच्चों, शोषण और हिंसा के शिकार) के लिए अवसरों में समानता सुनिश्चित करें।

नीति संबंधी दस्तावेज़ और शिक्षा के विमर्शों में स्कूल का क्या अर्थ है यह समझाने के लिए लचीले मानक तैयार किए जाने की ज़रूरत है। ये मानक शैक्षिक सिद्धांतों और बच्चों के लिए समानता तथा न्याय के सिद्धांतों पर आधारित होने चाहिए। वे इस दृष्टि के साथ बनाए जाने चाहिए जिसमें स्कूल के लिए ऐसी प्रक्रियाएँ निर्धारित हों जो सभी बच्चों के सीखने में सहायक हों।

भौतिक परिस्थितियाँ :

मूलरूप से शिक्षा चेतन तथा अचेतन जुड़ाव और संवाद के माध्यम से सीखने के अवसर प्रदान करने की प्रक्रिया है। स्कूलों को इस तरह के अवसर सुनिश्चित कराने में सशक्त होना चाहिए तथा बच्चे को अवसर देने चाहिए कि वह स्वयं खोज सके। इसी प्रकार शिक्षक ऐसे होने चाहिए जिनके पास समय हो तथा जुड़ाव के लिए धैर्य। यह स्कूल का दायित्व होना चाहिए कि सीखने की प्रक्रिया में सभी बच्चों को शामिल करने के लिए उपयुक्त सामाजिक भावनात्मक स्थितियाँ सुनिश्चित करें। इसके लिए व्यवस्था की ओर से ज़रूरी सुविधाएँ, योग्य एवं संवेदनशील शिक्षक तथा सीखने के लिए उपयुक्त वातावरण दिया जाए।

चूँकि छोटे बच्चों को ज़्यादा गहरे जुड़ाव और बातचीत की ज़रूरत है। अत: शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात शुरुआती कक्षाओं के लिए श्रेष्ठ होना चाहिए। उदाहरण के लिए यह एक सही समुच्चय हो सकता है; पूर्व-प्राथमिक से कक्षा 2 के लिए 1:20, कक्षा 3 और 4 के लिए 1:30 तथा माध्यमिक विद्यालय के लिए 1:40।

आरंभिक विद्यालय में बच्चों को हाथ से करके सीखने के बहुत सारे अनुभव देने आवश्यक है जिन पर वे चिंतन कर सकें। इसलिए उचित मात्रा में उपयुक्त अधिगम सामग्री तथा इसे संग्रहित करने के लिए पर्याप्त स्थान की आवश्यकता है।

बच्चों को अपने साथियों के साथ काम करने की ज़रूरत है - समूह कार्य के लिए पर्याप्त स्थान उपलब्ध कराना आवश्यक है। अच्छी तरह से ढका हुआ एवं अच्छी प्रकाश व्यवस्था के साथ प्रत्येक बच्चे के लिए 9 वर्ग फीट का स्थान ज़रूरी है। फर्नीचर ऐसा होना चाहिए जिसमें बच्चे स्वयं आपस में और शिक्षिका से भी बातचीत कर सकें।

प्रत्येक विद्यालय में बच्चों के लिए उपयुक्त खेल का मैदान होना चाहिए।

3. **हमारी विद्यालयी व्यवस्था, विद्यालयी शिक्षकों पर भरोसा करे** अगर हम व्यवस्था की गुणवत्ता में सुधार को प्रभावित करना चाहते हैं तो सारी सहयोगी व्यवस्थाओं- क्लस्टर से राज्य स्तर तक, को अपने सहयोग को शिक्षकों

के प्रति विश्वास और सम्मान पर आधारित करना होगा जिसमें उसे एक उपयुक्त स्वायत्त जगह देनी होगी। शिक्षकों को इस बात के लिए प्रोत्साहित और सहयोग दिए जाने की भी ज़रूरत है कि वे खुद अपने लिए सहयोगी समूह बना सकें।

राज्य को व्यवस्था के भीतर ठेके पर काम निपटाने से बचना चाहिए। प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों के पास अवसरों का एक विकास-पथ होना चाहिए ताकि वे ज़िला और राज्य स्तर पर पाठ्यचर्या के विकास और विभिन्न संगठनों (डाइट और एस.सी.ई.आर.टी.) के क्षमता विकास से जुड़ सकें और उनके द्वारा यह विकल्प हमेशा होना चाहिए कि अगर वे चाहें तो पुनः प्रारंभिक स्कूल शिक्षण की ओर लौट सकें।

4. **प्राथमिक स्कूलों के स्तर पर कक्षा और स्कूलों में समुदाय की भागीदारी इस बात की माँग करती है कि पाठ्यचर्या के एक हिस्से को स्कूल के स्तर पर रचा जाए या कार्य स्थल में स्कूलों के एक समूह के बीच** सी.आर.सी., बी.आर.सी. और डाइट में काम करने वालों को इस प्रक्रिया में शामिल किया जाए। उन्हें स्कूलों और प्राथमिक स्कूल के बच्चों के साथ पर्याप्त समय बिताना चाहिए तथा शिक्षकों के साथ लंबे समय तक काम करके सामग्री और विचारों को सामने लाना चाहिए। **प्रत्येक स्तर पर मौजूदा शैक्षिक संस्थाओं में लोकतंत्रीकरण की प्रक्रियाओं को मजबूत करने के लिए व्यवस्थात्मक बदलाव ज़रूर लाया जाए और इन प्रक्रियाओं की स्थिति को दर्शाने वाले तरीकों को भी जगह मिलनी चाहिए।**

   स्कूल से ऊपर की क्लस्टर, ब्लॉक, ज़िला, राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर की-सभी संस्थाओं को सहयोग देने और सशक्त करने की भूमिका निभाने की ज़रूरत है न कि प्रबोधक और निरीक्षक की।

5. बच्चों के शैक्षिक अधिकार और बड़ी संख्या में ऊँची कक्षाओं के दबाव को देखते हुए **उच्च प्राथमिक स्तर और माध्यमिक स्तर पर स्कूलों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए।** चूँकि इस स्तर पर विषयों की विषयवस्तु औपचारिक तार्किक संबंध बनाने और अवधारणाओं के समझने पर आधारित होती हैं- जो कि ज़रूरी नहीं है कि मूर्त अनुभवों से जुड़े हों, इसलिए स्कूलों को चाहिए कि वे प्रयोग, सर्वे, अध्ययन और पाठ्यचर्या के ढाँचे के भीतर अन्य व्यक्तिगत और सामूहिक कार्यों को करने की संभावनाओं को ज़रूर मुहैया कराएँ। यह इसकी माँग करता है कि हम ऐसी प्रक्रियाओं और अवसरों को स्थापित करें जिससे स्कूल के शिक्षकों तथा अन्य स्कूलों के शिक्षकों के बीच नियमित रूप से एक मशविरा हो तथा उनकी पहुँच सामग्रियों और एक अच्छे समृद्ध पुस्तकालय तक हो। उच्च स्तर के अधिकारी इसमें सक्षम हों कि शिक्षक प्रशिक्षण में नवाचारों का समर्थन अपेक्षित तकनीकी सहायता के साथ कर सकें और उनको ज़रूरी संसाधन मुहैया कराएँ।

पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी

हमें इस बात को ज़रूर स्वीकार करना चाहिए कि गरीब बच्चे, खासकर पहली पीढ़ी के सीखने वालों के पास घर में सीखने के लिए कोई सहयोगी व्यवस्था नहीं होती है। किसी भी बच्चे को धीमी गति या फिर न समझ पाने वाला होने की वजह से उसे स्कूल से बाहर नहीं धकेल दिया जाना चाहिए। संपूर्ण शिक्षा व्यवस्था को ऐसे बनाए जाने की ज़रूरत है जिससे कि वह ऐसे बच्चों की ज़रूरतों की पूर्ति कर सकें और उनके साथ सम्मान एवं संवेदनशीलता के साथ बर्ताव कर सकें, ताकि वे हर दिन स्कूल में आने के लिए प्रोत्साहन पा सकें।

परीक्षा सुधार

बहुत सारे विद्यार्थियों के लिए कक्षा दस का वर्ष बेकार के तनाव का समय होता है। अपेक्षाकृत बेहतर विद्यार्थियों के बीच परीक्षा में फेल होने को एक प्रमुख आपदा के रूप में देखा जाता है। यहाँ तक कि पर्याप्त उच्च अंक न पाने

पर भी गहरी चिंता एवं आत्मग्लानि का भाव भर जाता है। स्कूल के नज़रिए से देखने पर यह पता चलता है कि यह परीक्षा उच्च प्राथमिक तक, नीचे उतरते हुए, स्कूल की विषयवस्तु तथा विधि को निर्धारित करती है। इसलिए अगर हम संपूर्ण शिक्षा प्रणाली में अर्थपूर्ण सुधार अवकल्पित करते हैं तो यह आवश्यक है कि हम परीक्षा एवं उससे जुड़ी हुई पाठ्यचर्चा, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों पर आलोचनात्मक नज़र डालें।

चाहे कोई अंक दे या ग्रेड, कक्षा दस की परीक्षाओं की पास-फेल की बुनियादी स्थिति बदलनी चाहिए और उसका विकल्प उभारना चाहिए। उन विद्यार्थियों को ता-उम्र 'दसवीं फेल' के अपमानजनक लेबल से गुज़रने के लिए मजबूर नहीं होना चाहिए जो कक्षा दस में ग्रेड नहीं बना सके। स्कूलों का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाना चाहिए कि कितने विद्यार्थी अपनी पढ़ाई जारी रख पा रहे हैं। **इस आधार पर स्कूलों का मूल्यांकन नहीं किया जाना चाहिए कि वे परीक्षा में क्या निष्पादन कर रहे हैं।** इस अवस्था में बच्चे पंद्रह या सोलह वर्ष के किशोर होते हैं; स्कूलों को इन किशोरों को विभिन्न क्षेत्र में निर्देशन एवं परामर्श देते हुए इनके साथ अवश्य जुड़ना चाहिए।

6. विकेंद्रीकरण

विकेंद्रीकरण के सायास तरीके के जरिए ही स्कूल, विभाग तथा शैक्षणिक संस्थाओं का विकेंद्रीकरण हो सकता है। स्थानीय प्रशासन तंत्र को स्टाफ़ एवं नौकरशाही के प्रत्येक सोपानों के व्यक्तियों से भारी समर्थन की ज़रूरत हो सकती है। **इस संदर्भ में जो मुख्य मुद्दे हैं, वे हैं - स्थानीय, प्रांतीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर काम करने वाले बहुस्तरीय राजनीतिक विभागीय तंत्र के परिक्षेत्र में रूपरेखा तैयार करना और यह समझना कि बच्चों के शिक्षा के अधिकार को समर्थन देने में इन स्तरों की अपरिहार्य भूमिका है।** यह सावधानी अवश्य बरती जानी चाहिए कि विकेंद्रीकरण निचले स्तर के पदानुक्रम (हाइयार्की) पर ज़िम्मेवारियाँ न लादे जो उनकी निर्णय प्रक्रिया के लिए उपयुक्त न हो। शैक्षिक तंत्र में पर्याप्त लचीलापन एवं स्वायत्तता होनी चाहिए : नीति निर्माण, वित्त आवंटन, प्रशासनिक निर्देशक प्रावधान, अकादमिक समर्थन को इस प्रकार तैयार किया जाना चाहिए ताकि वह सबसे निचले स्तर के नीति-निर्माण की स्वायत्तता को समर्थन दे सकें।

7. स्थानीय निकाय एवं समुदाय को मजबूती प्रदान करना

शिक्षकों को प्रभावकारी तरीके से अपने दायित्व को पूरा करने के लिए सक्षम बनाने के लिए ग्राम पंचायतों की ज़्यादा भागीदारी की आवश्यकता है। तब भी विकेंद्रीकरण एवं स्थानीय भागीदारी की ज़रूरत कट्टरवादी प्रकृति की नहीं है। सूक्ष्म स्तर की योजना के लिए, बच्चों के अनुरूप रणनीति एवं स्थानीय संघर्षों को सुलझाने के लिए इसकी आवश्यकता है। सचमुच इसका कोई दूसरा समाधान नहीं है। *समस्याओं के समाधान में स्थानीय निकाय सबसे ज़्यादा संसाधन युक्त हैं। उन्हें इसकी अच्छी समझ है।* स्थानीय संदर्भ के साथ संगति बैठाते हुए पाठ्यचर्या परिवर्तन के इन्हीं संदर्भों में बहुलता तथा सांस्कृतिक विविधता अनिवार्य हो जाती है।

8. भूमिकाओं के दुहराव को दरकिनार करना

भूमिकाओं के संदर्भ में स्पष्टता होनी चाहिए और संपूर्ण संरचना की कार्यविधि परस्पर पूरकता के सिद्धांत पर टिकी हुई होनी चाहिए। यह ज़िम्मेवारियों के दुहराव, समय की बर्बादी और संसाधन तथा नियंत्रण के विभ्रम को दूर करेगा। 'स्थानीय' के लिए समर्थन की संरचनाएँ होनी चाहिए न कि केवल मॉनीटरिंग तथा लक्ष्य निर्धारण का कार्यक्रम। **सबसे अधिक यह व्यवस्था व्यवसायीकरण तथा पदानुक्रम के प्रत्येक सोपान के अधिकारी की सघन भागीदारी**

की माँग करती है।

9. काम की प्रगति का योजनाकरण तथा संप्रेषण

संपूर्ण व्यवस्था को लक्ष्य चालित होने की जगह प्रक्रिया चालित होना चाहिए। यह सीमित अवधियों में अंकुरित होने वाली लघु परियोजनाओं की जगह एक लंबी अवधि की अंतरपीढ़िक योजनाकरण की माँग करता है। इसके अलावा कार्यप्रणाली में तौर-तरीके ऐसे हों जिसे सभी समझ सकें तथा स्वीकार कर सकें। साथ ही यह शिक्षक, शिक्षाविद एवं पेशेवरों की पृष्ठभूमि से आए लोगों की माँग के जवाब में व्यवस्थित तरीके से तकनीकी सहायता एवं विशेषज्ञता मुहैया करवा सके। अपनी वार्षिक मूल्यांकन/रपट में प्रत्येक स्तर मसलन सी.आर.सी., बी.आर.सी., डाइट, एस.सी.ई.आर.टी., एन.सी.ई.आर.टी. तथा सभी शिक्षा विभागों, परीक्षा बोर्डों को समुदाय, शिक्षक तथा स्कूलों की ओर से आई हुई माँगों के संदर्भ में उनके द्वारा किए गए नीतिगत सुधारों, पहलकदमियों का रिकार्ड पेश किया जाना चाहिए।

10. सतत मूल्यांकन की आवश्यकता

शिक्षा व्यवस्था के विकेंद्रीकरण की जाँच करने के लिए हमें समय-समय पर अध्ययन एवं रपट का आयोजन करना चाहिए, यह देखने के लिए कि क्या व्यवस्थागत तथा संगठनात्मक परिवर्तन हुए हैं और उनका क्या प्रभाव रहा है?

संदर्भ

सिक्सथ ऑल इंडिया एजुकेशनल सर्वे, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, 1998

सेवेंथ ऑल इंडिया स्कूल एजुकेशन सर्वे, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, 2002

अग्रवाल, एम.पी., *मेजरमेंट एंड कंपीटेंस ऑफ़ टीचर्स ऑफ़ प्राइमरी स्कूल्स (मध्य प्रदेश), सेकंड सर्वे ऑफ़ रिसर्च इन एजुकेशन (1972-1978),* बड़ौदा : सोसायटी फॉर एजुकेशनल रिसर्च एंड डेवलपमेंट, 1969

अरुण मेहता, प्रजेंटेशन ऑन डी.आई.एस.ई. डाटा 2003-04, एन.आई.इ.पी.ए. (नीपा), नयी दिल्ली, 2005

भट्ट, वी.डी. और बवाने, जे., *ए स्टडी ऑफ़ डिसक्रिपेंसी बिट्वीन इक्स्पेक्टिड एंड एक्चुअल आउटकम्स ऑफ़ द प्राइमरी टीचर एजुकेशन, इंडियन एजुकेशनल रिव्यू,*32(2),155-164, 1997

भट्ट, वी.डी., *आइडेंटिफिकेशन ऑफ़ एसेंशियल कंपीटेंसीज़् फॉर प्राइमरी टीचर्स,* रिपोर्ट ऑफ़ द डी.पी.ई.पी. एक्टिविटी ऑफ़ द एन.सी.ई.आर.टी, नयी दिल्ली, अंडरटेकन एट द रीज़नल इंस्टीट्यूट ऑफ़ एजुकेशन, मैसूर, 1998

चैलेंज ऑफ़ एजुकेशन - ए पॉलिसी पर्सपेक्टिव, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1985

कंपीटेंसी बेस्ड एंड कमिटमेंट ओरियंटेड टीचर एजुकेशन फॉर क्वालिटी स्कूल एजुकेशन - इन सर्विस एजुकेशन, नेशनल काउंसिल फॉर टीचर एजुकेशन, नयी दिल्ली, 1998

कंपीटेंसी बेस्ड एंड कमिटमेंट ओरियंटेड टीचर एजुकेशन फॉर क्वालिटी स्कूल एजुकेशन - इनीसिएशन डॉक्यूमेंट, नेशनल काउंसिल फॉर टीचर एजुकेशन, नयी दिल्ली, 1998

कंपीटेंसी बेस्ड टीचर ट्रेनिंग प्रोग्राम, डी.पी.ई.पी., तमिलनाडु इन न्यूजलेटर डी.पी.ई.पी. कॉलिंग, अंक संख्या 17, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली, 1996

डिफिकल्टीज़ ऑफ़ बेसिक स्कूल टीचर्स, ए सर्वे ऑफ़ रिसर्च इन एजुकेशन, नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ बेसिक एजुकेशन, केस (सी.ए.एस.ई.), बड़ौदा, 1960

डिस्ट्रिक्ट इंस्टीट्यूटस् ऑफ़ एजुकेशन एंड ट्रेनिंग (डाइट) - गाइडलाइंस, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1989

डी.ओ.ई.ई.एल., मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, वेबसाइट।

एजुकेशन फॉर ऑल (ई.एफ.ए.) : द *इंडियन सीन,* भारत सरकार, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली, 1993

एलिमेंट्री टीचर एजुकेशन कॅरिकुलम : गाइडलाइंस एंड सिलेबी, नेशनल कॉउंसिल ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग, नयी दिल्ली, 1991

फिफ्थ ऑल इंडिया एजुकेशनल सर्वे, खंड–I, नेशनल कॉउंसिल ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग, नयी दिल्ली, 1992

फोर्थ सर्वे ऑफ़ रिसर्च इन एजुकेशन 1983–88 (खंड–I), एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

गोविंदा, आर. और वर्गीज, एन.वी., *दी क्वालिटी ऑफ़ बेसिक एजुकेशन सर्विसज इन इंडिया – ए केश स्टडी ऑफ़ प्राइमरी स्कूलिंग इन मध्य प्रदेश, फिफ्थ सर्वे ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च* (1988–1992) *: ट्रेंड रिर्पोट्स, खंड–I,* एन.सी.ई.आर.टी, नयी दिल्ली, 1991

झा और झिंगरन, *एलिमेंट्री एजुकेशन फॉर द पूअरेस्ट एंड अदर डिप्राइव्ड ग्रुप्स,* सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च, नयी दिल्ली, 2002

मानवी मज़ूमदार, *डिसेंट्रेलाइजेशन, रिफार्म्स एंड पब्लिक स्कूल्स,* ए ह्यूमन पर्सपेक्टिव, जर्नल ऑफ़ एजुकेशनल प्लानिंग एंड एडमिनिस्ट्रेशन, खंड–XVII- सं. 4, अक्तूबर 2003. पृ. 481–506

मिड–टर्म रिव्यू ऑफ़ द *नाईंथ फाइव इयर प्लान,* योजना आयोग, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 2001

नेशनल कमिशन ऑन टीचर्स–I, 1983–85, *दी टीचर एंड सोसाइटी,* रिपोर्ट ऑफ़ द नेशनल कमिशन ऑन टीचर्स–I, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1986

नेशनल कॅरीकुलम फॉर एलिमेंट्री एंड सेकेंडरी एजुकेशन – ए फ्रेमवर्क (संशोधित प्रति) एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, 1988

नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन – 1986, (1992 में किए गए संशोधन के साथ), शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1992

नेशनल पॉलिसी ऑन एजुकेशन (एन.पी.ई.), शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 1986

प्रॉब रिपोर्ट, *पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन इन इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली, 1999

प्रोग्राम ऑफ़ एक्शन (पी.ओ.ए.), भारत सरकार, शिक्षा विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नयी दिल्ली, 1992

रामचंद्रन, विमला (संपादक), *जेंडर एंड सोशल इक्विटी इन प्राइमरी एजुकेशन–हाईरार्की ऑफ़ एक्सेस,* सेज पब्लिकेशंस, नयी दिल्ली, 2004

रामचंद्रन, विमला और ई.आर.यू. टीम, *स्नेक्स एंड लैडर्स : फैक्टर्स इंफ्लुएनसिंग सक्सेसफुल प्राइमरी स्कूल कंपलीशन फॉर चिल्ड्रेन इन पावर्टी कंटेक्स्ट,* साउथ एशियन ह्यूमन डेवलपमेंट सेक्टर रिपोर्ट नं. 6, विश्व बैंक, नयी दिल्ली 2004

रेड्डी, बी.पी., *जॉब सटिस्फैक्शन ऑफ़ प्राइमरी स्कूल टीचर्स, फिफ्थ सर्वे ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च (1988-1992) : ट्रेंड रिपोर्ट्स,* खंड. 1, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, 1989

रिपोर्ट ऑफ़ द एजुकेशन कमिशन (1964-66), *एजुकेशन एंड नेशनल डेवलपमेंट,* नयी दिल्ली : शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार 1966

रिपोर्ट ऑफ़ द वर्किंग ग्रुप ऑन चाइल्ड डेवलपमेंट फॉर द टेंथ फाइव इयर प्लान, योजना आयोग, भारत सरकार, नयी दिल्ली, 2001

टीचर डेवलपमेंट फॉर बेटर पुपिल एचिवमेंट, रिपोर्ट ऑफ़ रीजनल टैक्निकल वर्किंग ग्रुप कम ट्रेनिंग वर्कशाप ऑन इन-सर्विस ट्रेनिंग ऑफ़ एजुकेशनल परसोनल, 29 अक्तूबर - 16 नवंबर 1985, ए.पी.ई.आई.डी., यूनेस्को, बैंकाक, 1986

द *कॅरिकुलम फॉर द टेन-इयर स्कूल-ए फ्रेमवर्क,* एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली, 1975

द *प्रतीची एजुकेशन रिपोर्ट,* प्रतीची (इंडिया) ट्रस्ट, नयी दिल्ली, 2002

द प्रॉब टीम इन एसोसिएशन विद सेंटर फॉर डेवलपमेंट इकोनॉमिक्स, *पब्लिक रिपोर्ट ऑन बेसिक एजुकेशन इन इंडिया (प्रॉब),* नयी दिल्ली : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1999

द वर्ल्ड बैंक रिपोर्ट, *प्राइमरी एजुकेशन इन इंडिया,* एलायड पब्लिशर्स, नयी दिल्ली, 1997

वर्गीज, एन.वी. और गोविंदा, आर., *इंटर स्कूल वेरिएशन इन स्टूडेंट्स एचिवमेंट : एन एनालसिस ऑफ़ प्राइमरी स्कूल इन फाइव सलेक्टेड लोकेल्स, पर्सपेक्टिव इन एजुकेशन,* 9(1), 15-34, 1993

वर्गीज, एन.वी., *स्कूल इफेक्ट्स ऑन एचिवमेंट: ए स्टडी ऑफ़ गवर्मेंट एंड प्राइवेट एडेड स्कूल्स इन केरल,* कुलदीप कुमार (संपादित), स्कूल इफेक्टिवनेस एंड लर्निंग एचिवमेंट एट प्राइमरी स्टेज: इंटरनेशनल पर्सपेक्टिव्स, एन.सी.ई.आर.टी, नयी दिल्ली, 1995

वर्ल्ड बैंक, रीचिंग द चाइल्ड : एन इंटीग्रेटेड एप्रोच टू चाइल्ड डेवलपमेंट, ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, दिल्ली 2004